कल्याण

मूल्य ८ रुपये



भगवान् श्रीकृष्ण





पंचदेव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः। तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ गोरखपुर, सौर श्रावण, वि० सं० २०७२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई० पूर्ण संख्या १०६४

एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें

हैं सर्वाधार।

*

*

*

*

*

*

*

*

*

* *

तत्त्व

चिदानन्दघन परम

प्रभ्

*

सर्वगत वे ही अखिल विश्वमय रूप अपार॥ * * भानु, शक्ति, गणपति हैं इनके पाँच स्वरूप उदार। * उपास्य उन्हें भजते जन भक्त स्वरुचि-श्रद्धा-अनुसार॥ मान * × * 'उपास्य' देव ही करते लीला विविध अनन्त प्रकार। * विभिन्न रूपोंमें निज-निज रुचि-अनुसार॥ पूजे जाते वे * सर्वोपरि—कर्तव्य—धर्म है यही जीवनका एक, सार। * स्वकर्मोंसे उपासना उनकी ही, विचार॥ * रख शुद्ध [पद-रत्नाकर]

काल्याण, सार श्रायण, विरु सर्व रूउ	२, श्रीकृष्ण-सं० ५२४१, जुलाई २०१५ ई०
विष	य-सूची
विषय पृष्ठ-संख्या	विषय पृष्ठ-संख्या
२- कल्याण	१४- नसीबकी चाभी कर्मके हाथ (डॉ॰ गो॰ दा॰ फेगडे) इ १५- मानसमन्दिर का स्वर्णकलश (डॉ॰ श्रीरामस्वरूपजी ब्रजपुरिया, विद्यावाचस्पिति) इ १६- द्रष्टा बिनये (सुश्री कृष्णा कुमारीजी) इ १७- शिवजी भैया [कहानी] (श्रीरामेश्वरजी टांटिया) [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया] इ १८- भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ (डॉ॰ श्रीअशोकजी काले) [प्रेषक—श्रीरामदयालजी पोद्दार] इ १९- संत उद्बोधन (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) इ २०- साधनोपयोगी पत्र इ ११- व्रतोत्सव-पर्व [श्रावणमासके व्रतपर्व] इ
– भगवान् श्रीकृष्ण – पंचदेव	१त्र-सूची (रंगीन) आवरण-पृष् ('') मुख-पृष
८- शिवजीरामसे क्षमा माँगते रामदयाल((इकरंगा)
६- हरियाना गाय	
्र हरियाना गाय	तय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥ तय । जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥ प्रते । गौरीपति जय रमापते ॥ US\$ 45 (₹ 2700) {Us Cheque Collection US\$ 225 (₹ 13500) {Charges 6\$ Extra

संख्या ७] कल्याण याद रखो-कभी-कभी हम ऐसा सोचते हैं कि बना देता है; हमारी सजावटको दर्पण पूरा-पूरा हमें ही क्या करें, विश्वरूप भगवानुकी पूजाके उपयुक्त साधन ही तुरंत उसी क्षण लौटा देता है; वैसे ही प्रभुके प्रति की हुई सद्भावना, उन्हें समर्पित की हुई वस्तु उन्हें छुकर हमारे पास नहीं हैं। साधनके अभाववश ही हम पूजा नहीं कर सकते; पर ऐसी धारणा हमारे मनका भ्रम ही है। यह उसी क्षण हमारे पास चली आती है। हमारी पुजाको बात बिलकुल नहीं है कि जो साधन हमारे पास नहीं हों, प्रभु ज्यों-की-त्यों अविलम्ब हमें ही अर्पित कर देते हैं, वे हो जायँ, तभी प्रभुकी पूजा होगी। असलमें हमारे अन्दर हमारी दुकानपर ग्राहकके रूपमें आये हुए भगवानुकी पुजाकी सच्ची चाह होनी चाहिये। चाह होनेपर हम यदि हम वंचना करते हैं तो वह असद् व्यवहार हमींपर प्रतिफलित होता है, दूसरेपर नहीं; फलत: प्रभुको ठगने अपनेद्वारा होनेवाले प्रत्येक कर्मसे, प्रत्येक चेष्टासे उनकी पुजा कर सकते हैं। जीवन-निर्वाहके लिये कोई-न-कोई जाकर हम स्वयं ठगे जाते हैं! ऐसा न करके यदि हम कार्य तो हम करते ही हैं; हम दूकानदार हैं, दूकानपर हम अपने दैनिक व्यवहारको विशुद्ध बना लें, दुकानपर प्रतिदिन दस घण्टे नियमसे बैठते हैं। अब सोचकर देखें, आये हुए प्रत्येक ग्राहकके रूपमें प्रभुको पहचानकर ग्राहकके रूपमें हमारी दुकानपर कौन आता है ? प्रभु ही सबको समान आदरभाव देते हुए पवित्र लेन-देन करें तो यह हमारी खरीद-बिक्री ही विश्वरूप प्रभुकी पूजा तो आते हैं। फिर प्रभुको उस रूपमें देखकर, पहचानकर, सम्मानपूर्वक उचित मुल्य लेकर उनकी सेवाकी दुष्टिसे बन जायगी। ऐसे ही यदि हम चिकित्सक हैं तो प्रत्येक यदि हम उन्हें ईमानदारीके साथ अच्छी वस्तु दे देते हैं तो रोगीमें प्रभुको पहचानकर, शिक्षक हैं तो प्रत्येक छात्रमें यह माल बेचना ही हमारी पूजा हो जायगी। किंतु हमारी भगवानुको विराजित देखकर और वकील हैं तो प्रत्येक वृत्ति तो यह होती है कि ग्राहकसे अधिक-से-अधिक वादी, प्रतिवादी, न्यायाधीश, साक्षीमें अपने इष्टदेवको मूल्य लेकर बदलेमें घटिया माल उसके हाथमें खपा दें। ही अभिव्यक्त देखकर यथायोग्य अपने उचित विशुद्ध हम नमूनेमें दिखाते कुछ और हैं और देते समय देते कुछ व्यवहारसे उनकी पूजा कर सकते हैं। *याद रखो*—हम जहाँ जिस क्षेत्रमें हैं. जिस और हैं! इस प्रकार अपने ही इष्टदेवकी हम वंचना करते हैं। इतना ही नहीं, उन्हें ठगकर उलटा हम उन्हींपर झूठा परिस्थितिमें जो भी काम करते हैं, वहीं उसी क्षेत्रमें, उसी अहसान लादते हैं कि 'देखो जी! यह वस्तु इतने मुल्यमें परिस्थितिमें अपने कामको विशुद्ध बना सकते हैं तथा हमने आपको दे दी, दूसरी जगह आपको नहीं मिलेगी।' फिर अपने सम्पर्कमें आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिमें प्रभुको देखकर उन्हें यथायोग्य रूपमें अपनी विशुद्ध पूजा समर्पित याद रखो-भगवान् देखते हैं-'देखो, यही व्यक्ति कर सकते हैं। अनादि-संस्कारवश एक बार ऐसा करनेमें मन्दिरमें तो मेरे समक्ष विविध उपचार रखकर बडे आदर-भावसे मेरी पूजा करता है; पर जब मैं इस रूपमें यहाँ कुछ कठिनताका अनुभव हो सकता है, पर यदि हममें लगन है, अपने जीवनको पूजामय बनानेके लिये हम उसकी पूजा ग्रहण करने आया, तब बुरी तरहसे यह मुझको एवं अपने-आपको ठग रहा है।' वास्तवमें तो कटिबद्ध हैं तो अनन्त शक्तिमान् प्रभुकी शक्ति अपने-हमीं ठगे जाते हैं; क्योंकि सर्वसमर्थ प्रभु तो नित्य अपनी आप हमें ऊपर उठाने लगेगी, कठिनाइयाँ दूर होती जायँगी, अखण्ड महिमामें स्थित हैं, अपने स्वरूपानन्दसे नित्य आगे-से-आगे सुगम पथ दीखता जायगा। फिर हमें यह परिपूर्ण हैं, हमारी पूजा ग्रहण करनेकी आवश्यकता उन्हें भ्रम नहीं होगा कि पूजाके उपयुक्त साधन ही हमारे पास नहीं है, हम करें तो क्या करें ? हमें तब स्पष्ट दीखेगा कि नहीं है; वे तो स्वभावगत करुणावश हमारा मंगल करनेके लिये ही हमारी पूजा स्वीकार करते हैं। पूजा करनेका जो जिस वेषमें प्रभु पूजा ग्रहण करने आये हैं, उसके अनुरूप कुछ भी फल है, लाभ है, वह तुरंत पूजा करनेवालेको ही पूजाकी सामग्री उन्होंने पहलेसे ही हमारे पास भेज रखी वे लौटा देते हैं, जैसे सज-धजकर हम दर्पणके सामने है। यदि परम उत्साहसे हम उन सामग्रियोंका खुले हाथों खड़े होते हैं तो वह उस समय हमारे मुखका सौन्दर्य उपयोग करेंगे तो धीरे-धीरे हमारा जीवन पूजामय होकर उसमें दीखनेवाले प्रतिबिम्बको भी ठीक उसी मात्रामें सन्दर ही रहेगा। 'शिव'

भगवान्के विशुद्ध प्रेमका उपाय (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

[गताङ्क ६ पृ०-सं० ९ से आगे]

विषयमें मैं कायर हूँ, आपका कोई दोष नहीं है। मेरेमें प्रेमी प्रेमास्पदके बिना बहुत समयतक नहीं जी

सकता। हम देखते हैं कि जैसे भरतका प्रेम है, वैसे ही कायरता है, मैं पात्र नहीं हूँ। भगवान्ने सोचा कि यह

लक्ष्मणजीका भी प्रेम भगवान्में कम नहीं था। जब

श्रीराम लक्ष्मणजीसे कहते हैं कि 'तुम घरपर रहो,

क्योंकि भरत और शत्रुघ्न ननिहाल गये हुए हैं और हम

वनमें चले जायँगे तो पिताजी शोकके कारण दुखी हो

जायँगे। माता-पिताकी सेवा करना अपना धर्म है, नीति

है, इसे खयालमें रख करके तुम्हें घरमें ही रहना चाहिये।' इसपर लक्ष्मणजी कहते हैं कि 'प्रभो! धर्म

और नीतिका उपदेश तो उसे देना चाहिये, जिसे संसारमें

विभूति चाहिये, कीर्ति चाहिये। मैं तो आपका प्रेम-पालित हूँ, आप मुझे अलग न करें। यदि आप मुझे

अलग कर देंगे तो इसमें मेरा क्या वश है, क्या उपाय है।' भगवान् घर रहनेके लिये आग्रह करते हैं, इसपर

लक्ष्मण कहते हैं-दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं॥ हे नाथ! आपने 'तुम घरपर ही रहो'-यह जो

बात कही, वह ठीक कही-उचित बात कही; क्योंकि मैं यहाँ रहनेके लायक ही हूँ। कारण कि यदि मेरा

आपमें प्रेम होता तो आप रहनेके लिये कभी नहीं कहते। इसलिये आपने उचित बात कही। मैं प्रेमका पात्र नहीं हूँ। इस विषयमें मेरी कायरता ही मुझे प्रतीत होती है।

कायरता क्या? कायरता यह कि मुझमें ऐसी शूरवीरता नहीं है कि आप मुझे छोड़कर चले जायँगे तो आपके

वियोगमें, विरहमें व्याकुल होकर मैं मर जाऊँगा। आपके प्रति मुझमें इतना प्रेम नहीं है कि आपके वियोगको मैं

तो प्राण खो बैठेगा, इसलिये इसे साथमें ही ले चलो।

रामने कहा—'भैया, तुम हमारे साथ चलो, लेकिन माता सुमित्राका हुक्म ले आओ।' माता सुमित्रा भगवान्में

बहुत ही प्रेम रखती थीं। जब उन्होंने सोचा कि मेरा लड़का भगवान्की सेवाके लिये उनके साथमें जाता है तो हमारा अहोभाग्य है। मैं पुत्रवती हूँ ऐसा समझती हूँ;

क्योंकि मेरा पुत्र भगवान्का भक्त है, मैं वास्तवमें पुत्रवती हूँ— पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

पुत्रवती वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान् रामका भक्त हो, अन्यथा उसका पुत्र जनना व्यर्थ ही है,

इससे तो बाँझ ही भली—'नतरु बाँझ भिल बादि **बिआनी।** कितना उच्च भाव है। इतना ही नहीं सुमित्रा अपने पुत्रसे कहती हैं-

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥ 'हे तात! तुम्हारे ही भाग्यसे राम वन जा रहे हैं। रामके वन जानेमें दूसरा और कोई कारण नहीं है।' कैकेयी और कुबरी मंथरा—ये तो निमित्तमात्र हैं। सच्ची

बात तो यह है कि यहाँ तो सेवा करनेवाले बहुत थे और वनमें तू अकेला ही है। जब सीता और राम वन जा रहे हैं तो बेटा, तेरा यहाँ क्या काम है ? मेरे समान सीताको

और दशरथके समान रामको समझना चाहिये। मेरा तुमसे यही कहना है कि तुम सीता और रामकी सेवा

िभाग ८९

करना। मेरा यही उपदेश है और यही मेरा आदेश है। कितना सुन्दर उपदेश दिया है।

सुमित्राका और लक्ष्मणका भगवान् राममें प्रेम था, सीताका तो प्रेम था ही। सीताको भगवान् राम उपदेश

बर्दाश्त न कर सकूँ। आपके वियोगमें मैं प्राण खो बैठूँ, ऐसी मुझे उम्मीद नहीं है। यदि वास्तवमें मेरा आपमें इतना प्रेम होता कि आपके वियोगमें मेरे प्राण नहीं रहेंगे तो Hinduisen Bissord Server hitter: //das अप्री agra के कि ADE MITH & YE BX, Avinash Ash

संख्या ७] भगवान् के विशु	द्ध प्रेमका उपाय ७
****************************	*******************************
अच्छा नहीं होता। तुम अपने घरमें रहो, वनमें महान्	वियोगकी यन्त्रणा—विषम वियोगका जो दुःख है, उसे
क्लेश है। वनमें सरदी पड़ती है, गरमी पड़ती है, जोरोंसे	मेरे पामर प्राण सहन करेंगे, मेरे प्राण निकलेंगे नहीं, मैं
हवा चलती है, भयंकर बारिस होती है, वृक्षोंके नीचे	मरूँगी नहीं।' यह सुनकर भगवान्ने सोचा कि 'मेरे
रहना पड़ता है, खानेके लिये मिलते हैं कन्दमूल-फल,	वियोगमें यह प्राणोंका त्याग कर देगी', इसलिये भगवान्
वे भी कभी मिलते हैं, कभी नहीं मिलते। स्त्रियोंको	सीताको साथमें ले गये।
चुरानेवाले वहाँ राक्षस घूमते रहते हैं। भाँति-भाँतिके	अपने प्रेमास्पदका वियोग प्रेमीके लिये मरनेके
वनमें क्लेश हैं।' सीताने कहा—'प्रभो! आपने वनके जितने	तुल्य है। इस बातका रहस्य प्रेमी ही जान सकता है।
क्लेश बतलाये हैं, वे सब मिल करके आपके वियोगके	प्रेमास्पदको देख-देखकर प्रेमी मुग्ध होता है। उनका
मुकाबलेमें कुछ भी नहीं हैं, आपके वियोगमें तो—	दर्शन करके, स्पर्श करके, वार्तालाप करके, चिन्तन
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥	करके जीता है। भगवान्में प्रेम बढ़ानेके लिये अपने
'संसारके जितने भोग—विषयभोग हैं, वे सब	इष्टदेवका जो स्वरूप है—चाहे भगवान् श्रीरामका हो,
रोगके समान हैं।' विषय-भोगोंके भोगनेसे रोगोंकी	चाहे श्रीकृष्णका हो, चाहे भगवान् विष्णुका हो, चाहे
उत्पत्ति होती है, इसलिये विषयभोग रोग ही हैं और ये	भगवान् शिवका हो, उसका ध्यान करके ध्यानावस्थामें
जो गहने-आभूषण हैं, ये भाररूप हैं तथा संसार यम-	भगवान्से वार्तालाप करना, उनके चरणोंका स्पर्श करना,
यातनाके सदृश है। आप मुझे सुकुमारी कहते हैं। कहते	नेत्रोंसे उनका दर्शन करना, कानोंसे उनके प्रेम-भरे
हैं कि 'वनमें कुश–कण्टक आदि हैं। अच्छा, यदि मैं	वचनोंका श्रवण करना, दर्शन-भाषण-स्पर्श करके मुग्ध
राजकुमारी हूँ तो क्या आप राजकुमार नहीं हैं ? आपको	होना चाहिये; क्योंकि भगवान्के दर्शन भाषण-स्पर्श-
जब थकावट होगी तो मैं आपके चरणोंको दबा करके	वार्तालाप—चाहे मानसिक ही क्यों न हों—रसमय हैं,
आपकी थकावटको दूर करूँगी। मैं आपकी दासी हूँ,	अमृतमय हैं, प्रेममय हैं। भगवान्का जो स्पर्श हाथोंके
रात्रिमें आपके चरणोंको पलोटूँगी और आपका मुखारविन्द	लिये है, वह अमृतके समान है। भगवान्का वचन
देख-देखकर चकोर पक्षीकी भाँति मुग्ध होती रहूँगी।	कानोंके लिये अमृतके समान तथा भगवान्में जो दिव्य
उस समय मुझे किसी प्रकारका क्लेश नहीं होगा।' इस	गन्ध है, वह नासिकाके लिये अमृतके समान है,
प्रकार कहकर अन्तमें कहती हैं कि 'आप मुझे छोड़नेकी	भगवान्के जो दर्शन हैं, वे नेत्रोंके लिये अमृतके समान
जो बात कहते हैं, यह सुनकर मैं बर्दाश्त करती हूँ, यह	हैं, तात्पर्य यह कि सभी अमृतमय हैं, आनन्दमय हैं।
मेरे लिये शर्मकी बात है, दु:खकी बात है। क्योंकि—	भगवान्का दर्शन, भाषण, स्पर्श तथा वार्तालाप बहुत ही
ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।	मधुर हैं, भगवान्की जो मूर्ति है, वह मधुर है, इसीलिये
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पावँर प्रान॥	उसे माधुरी मूर्ति कहते हैं। इनकी सारी चेष्टा मधुर है।
(रा०च०मा० २।६७)	भगवान्की लीला मधुर, भगवान्का स्वरूप मधुर, भगवान्की
आप बार-बार मुझे यहाँ रहनेके लिये कह रहे हैं।	वाणी मधुर, भगवान्के गुण मधुर तथा भगवान्का नाम
पतिव्रता स्त्रीके लिये पतिके वियोगकी बात बहुत कठोर	मधुर। जो इस प्रकारसे अनुभव करता है, वह भला
है, आपके वियोगके कठोर वचन सुनकर मेरा हृदय	भगवान्के बिना कैसे जी सकता है। वह क्षणभर भी
फटता नहीं है, मेरा हृदय वज्र बन गया है। आपके	भगवान्के बिना नहीं रह सकता। भगवान्के वियोगको
कहनेसे मुझे यह मालूम होता है कि आप मुझे छोड़कर	भक्त बरदाश्त नहीं कर सकता और भगवान् भी भक्तके
जायँगे और मैं जीवित रहूँगी तथा आपके विषम	वियोगको बरदाश्त नहीं कर सकते। प्रेम बढ़ जानेसे

भाग ८९ ******************* भगवान् मिल जाते हैं। वह भगवान्के निकट सदा ही भगवानुका ही ध्यान रहता है। अपने-आपका भी ज्ञान रहता है। मिलनेके बाद यदि भगवान् अन्तर्धान हो जाते नहीं रहता। उसकी दशा बेदशा हो जाती है। फिर जब हैं तो भगवान्का भक्त भगवान्को छोड़कर कहीं जा वह अपनेको सँभालता है तो इतना मुग्ध हो जाता है सकता ही नहीं। यद्यपि भगवान् उसे छोड़कर अन्तर्धान कि उसे किसी बातकी चिन्ता पैदा ही नहीं होती; क्योंकि हो जायँगे, तब भी मनसे उससे दूर नहीं होते। प्रत्यक्ष उसके सारे संशयोंका नाश हो जाता है, सारे पापोंका न मिलनेके विरहकी व्याकुलतामें भक्तकी गोपियों-जैसी नाश हो जाता है। वह मन्त्रमुग्धकी तरह भगवान्को दशा हो जाती है। विरहकी व्याकुलतामें रुक्मिणीजीकी देखता रहता है और भगवान् उसे देखते रहते हैं। भी दशा बेदशा हो गयी थी। जब शिशुपाल ब्याहनेके 'भगवान् क्या हैं', इस तत्त्व-रहस्यको यदि हम समझ जायँ तो फिर भगवान्के बिना हम जी नहीं सकते, रह लिये आया और भगवान् समयपर नहीं पहुँचे तो वह एकदम व्याकुल होकर विलाप करने लगी। फिर भगवान्ने नहीं सकते, उनके वियोगको बरदाश्त नहीं कर सकते। सोचा कि प्राण खो बैठेगी, उसी समय रथ लेकर भगवान् हमलोग भगवान्का वियोग बरदाश्त कर रहे हैं, तभी रुक्मिणीके पास आ पहुँचे और रथमें बैठाकर ले आये। भगवान् हमें वियोग दे रहे हैं और जो बरदाश्त नहीं कर भगवान्में जिनका अतिशय प्रेम हो जाता है— सकता, उसे भगवान् वियोग कैसे देंगे? भगवान्का अनन्य प्रेम हो जाता है, विशुद्ध प्रेम हो जाता है, उनसे अधिकार ही नहीं है कि उसे वियोग दें, यह न्याय भी मिले बिना भगवान्से रहा नहीं जाता। उसी समय प्रकट नहीं है। हमलोग भगवानुके प्रेमके तत्त्वको नहीं समझते, हो जाते हैं। सारे संसारसे प्रेम हटाकर हमलोगोंको प्रेमके रहस्यको नहीं समझते, नहीं तो हम भगवान्के केवल भगवान्से प्रेम करना चाहिये। हमारा प्रेम विशुद्ध बिना कैसे जी सकते। जो भगवान्के लिये अपने-होना चाहिये--निष्काम होना चाहिये। जब भगवान्से आपको समर्पण कर देता है, भगवान् उसके लिये अपने-मिलनेकी इच्छा होती है, भगवान्में प्रेम होता है, तब आपको समर्पित कर देते हैं। जो इस तत्त्वको समझता भगवान् उसी समय प्रकट हो जाते हैं। भक्तलोग कहते है, वह तो भगवान्का ही होकर रहता है और यह हैं कि 'भगवानुके मिलनेके समय भक्तको इतना आश्चर्य समझता है कि 'इस संसारमें भगवान् ही हमारे हैं और होता है-इतना आनन्द होता है कि वह उसे सँभाल भगवानुके समान और कोई है ही नहीं। भगवानुके समान नहीं सकता।' उसे यह आश्चर्य होता है कि 'कहाँ तो हमारा कोई नहीं है, हमारा हितैषी कोई नहीं है, अपना भगवान् और कहाँ मैं ? क्या भगवान् वास्तवमें प्रकट हो कोई नहीं है।' शिवजी कहते हैं-'हे उमा! रामके समान हित करनेवाला दुनियामें और कोई भी नहीं है। गये' और यह आश्चर्य होता है कि 'मैं तुच्छ और माता-पिता, गुरु-बन्धु संसारमें भगवान्के समान कोई है भगवान् इतने उच्चकोटिके महापुरुष!' आनन्दकी सीमा ही नहीं'— नहीं रहती। उसे आश्चर्य होता है कि 'क्या वास्तवमें उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥ भगवान् ही मुझे मिल रहे हैं या मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया है या मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ?' महान् 'देवता, मनुष्य, तपस्वी, सबकी यह रीति है, सब आश्चर्य होता है, इतना आनन्द होता है—इतना आनन्द कोई स्वार्थके लिये ही प्रीति करते हैं'-होता है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। उसके नेत्रोंकी सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥ पलक एकदम नहीं गिरती, वह एकटक देखता ही रहता स्वार्थका त्याग करके तो केवल भगवान् ही प्रेम है, पलक गिरने-इतनी देर भी वह बरदाश्त नहीं कर करते हैं या भगवद्भक्त। इन दोको छोड़कर दुनियामें तीसरा सकता, देख-देखकर मुग्ध होता जाता है। केवल उसे कोई बिना स्वार्थके प्रीति करनेवाला नहीं है।[समाप्त]

छोटा-बड़ा कौन है ? संख्या ७] छोटा-बड़ा कौन है ? (महात्मा पं० श्रीशम्भुदयालजी शर्मा) यह मानवदेहधारी जीव अपने विचारोंका अभिमानी उस विभुकी प्रत्येक स्वल्प और महान् विभृति होकर अपने-आपको महान् समझे हुए है। अन्य सांसारिक अपने रंग-रूपमें परिपक्व होकर जहाँसे निकली है, उसी छोटी-बड़ी विभूतियोंका हमें क्या पता कि वे अपने मनमें अपने उपादान कारण ईश्वरमें विलीन हो जाती है। अपने-आपको क्या समझे बैठी हैं। हमें क्या पता कि एक प्रत्येक विभूतिका गुण, आकार, प्रकार, धर्म और समय जितना-जैसा नियत है, उतनी ही सीमामें वह अपनी चींटी अपने मनमें क्या अभिमान रखती है। जबिक यह मनुष्य ही मनुष्यजातिमें अपनी बुद्धि-विवेचनाके द्वारा यह थिरक दिखलाकर उसी महापटकी ओटमें लय हो जाती पता न लगा सका कि कौन छोटा और कौन बड़ा है, तो है। यह जो मनुष्य 'धर्म-धर्म' कहता-सुनता है, उसी हमें विश्वकी किसी भी वस्तुको छोटा या बड़ा कहनेका ईश्वरकी वाणी है। आप ही अपनेसे बने हुए आवरणसे क्या अधिकार है ? जबिक यह सब प्रपञ्च मायामय ही है आच्छादित हुआ, अपनी महत्ताका ध्यान धरता हुआ इस तो यह सब सामग्री एक ही भावकी हुई। यह जो कुछ आवरणसे निकल जाता है। विश्वकी प्रत्येक विभृति नाम-रूपात्मक जगत् दृष्टिमें आता है, इसमें पदार्थ तो सब अपने-अपने ठेकेमें अपने निर्मल और सूक्ष्म स्वरूपकी एक समान ही हैं। मिट्टीका बना हुआ राजा खिलौना, ओर अपना-अपना आलाप अलाप रही है। मिट्टीके सेवक खिलौनेसे अभिमान तो करता है, परंतु उसे क्योंकि वह आप ही सब विभृतियोंमें विराजमान यह नहीं मालूम कि तेरी और उसकी मिट्टीमें क्या अन्तर है। है। इसलिये कोई भी एक विभृति दूसरी विभृतिको अपनी यदि गन्ना अपने माधुर्यगुणसे अपने-आपको महान् ऐंठसे नहीं गाँठती है। दो समानके स्वत्वाधिकारियोंमें समझता है तो गिलोय भी अपने गुणोंमें कोई सानी नहीं छोटा-बडा कौन? रखती। यदि ह्वेल मछली अपने-आपको मशीन समझकर एक राजाके दो पुत्र हों और उन दोनों पुत्रोंको अभिमान करती है तो एक छोटा कीट भी अपने-आपको पृथक्-पृथक् यह ज्ञान हो कि वही एक राज्याधिकारी एक सूक्ष्म पुर्जा समझकर उसे ठोस बतलाता है। यदि है, तो वे दोनों परस्पर राज्याभिमानी होकर एक-दूसरेको तिरस्कृत करते हैं। इसी प्रकार चींटीसे लेकर ब्रह्मातककी मनुष्य विविध विद्याओंमें पारंगत हुआ अभिमान करता है तो चींटी भी अपनेमें विचित्र घ्राणशक्तिका अनुभव दशा है। सबमें एक ही सत्ता है। चींटी यदि ब्रह्माको आँख बताती है तो वह क्या छोटे बापकी बेटी है ? उसमें करके मन-ही-मन फूल सकती है। भी तो वही ऐंठ रहा है जो ब्रह्मामें है। तात्पर्य यह कि वही एक परमात्मा अपनी विभृतियोंमें आप ही बैठा हुआ अपनेको सबसे बड़ा कह रहा है। जब वह आत्मा अपने सूक्ष्म और निर्मल स्वरूपमें वास्तवमें न कोई बड़ा है, न कोई छोटा। इन विविध निकलकर खड़ा होता है तो सब विभूतियोंमें वह आप-वर्णकी हंडियोंमें वही एक परमात्मा उफन रहा है। ही-आप दृष्टि आता है। उसको यह समस्त संसार एक ही प्रकाश भिन्न-भिन्न प्रकारके शीशोंमेंसे (जड-चेतन) यह और वह, मैं और तू, हाँ और नहीं, अपनेहीसे उत्पन्न हुआ दृष्टि आता है। कोई भी मनुष्य विविध रंगका होकर भास रहा है। वह ईश्वर सूक्ष्म-से-सूक्ष्म वस्तुके भी उतना ही निकट है, जितना एक दूसरेकी बातोंको सुन-सुनाकर इस माया-जालसे नहीं बृहद्-से-बृहद् विभृतिके। वह सबके समीप है और निकल सकता। यह दूसरोंका कहना-सुनना आत्माका उस व्यक्तित्वके भीतर अपना मायामें बिखरा हुआ पन सबसे दूर है। है। कोई भी पुरुष अपने संकल्पसे अपने आत्मा जो नगमा सोजमें है वही साजमें (ईश्वर)-को पानेके लिये उसमें तत्पर हुआ, उसका फर्क नजदीको दूरकी आवाजमें

प्रेमी बनकर उसे पा लेता है। अर्थात् यह आत्मा न तो वेदादिके अध्ययनसे प्राप्त हो सकता है, न धारणाशक्तिसे और न अनेक शास्त्रोंके कठोपनिषद्में आया है-सुननेसे ही। (तो इस आत्माको कौन जान सकता है?) श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः जो इसका वरण करता है-इसे यथार्थमें चाहता है। शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः। उसी प्रेमीके प्रति यह अपने स्वरूप-तत्त्वको प्रकट कर आश्चर्योवक्ता कुशलोऽस्य लब्धा-देता है। श्चर्यो कुशलानुशिष्ट:॥ ज्ञाता क्योंकि यह आत्मा जिस प्रकार, जिन कारणोंसे मायामें (कठ० १।२।७) अर्थात् बहुतोंको तो इस आत्माके विषयमें श्रवण ही लिप्त हुआ है, उसी पथसे रस लेता हुआ, सरल विधिसे नहीं प्राप्त होता और बहुत-से सुननेपर भी इसे नहीं जानते। अपने-आपमें आ स्थित होता है। जैसे-वृक्षका बीज, वृक्ष, इस आत्मतत्त्वका वक्ता भी आश्चर्यरूप है और इसको फल और फूल होकर फिर बीज हो जाता है, इसी प्रकार प्राप्त करनेवाला श्रोता भी कोई कुशल पुरुष ही है। फिर यह मानवी देह वृक्षरूप है। इसका बीज वही आत्मतत्त्व है। जबतक आत्मा अपने भावको प्राप्त न होगा, तबतक इस तत्त्वका ज्ञाता (श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ कुशल आचार्यद्वारा उपदेश किया हुआ) भी आश्चर्य-स्वरूप है। अर्थात् मिलना यह शरीररूपी वृक्षमें अंकुरित होता ही रहेगा। और पहचानना दोनों ही महान् दुर्लभ हैं। जैसे वृक्ष तो भूमिसे रस खींचते हैं, अमरबेल भगवती श्रुति कहती है कि इस आत्मतत्त्वकी धरतीके आधार बिना, केवल वृक्षपरसे ही रस खींचती प्राप्ति महान् दुर्लभ है साथ ही बहुत सुगम है— है। इसी प्रकार ये जीव-जन्तु चलते-फिरते हुए ब्रह्माण्डसे अपना रस लेते रहते हैं। विविध जीवोंके रूप-गुण उनके नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो अपने-अपने संकल्पोंके आधारपर हैं। मुख्यत: अपने बहुना श्रुतेन। मेधया संकल्पको ही शुद्ध और सबल बनाना है। यह छोटा-वृणुते तेन यमेवैष लभ्य-स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम्॥ बड़ा सब संकल्पमात्र ही है अर्थात् संकल्प ही छोटा और बडा है। (कठ० १।२।२३) किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार' (श्रीबेताबजी केवलारवी) कर अभिमान विषय संग लपटो, मैं अति अधम गँवार।

> किशोरी अब आन परौं तोरे द्वार॥ पायो धन, बल, झुठे बसे नित मन मोरे सुनियो करुन पुकार। आन परौं तोरे द्वार॥

> > के

लीजो मोहि उबार।

हार

चौरासी

गयो

करो अब लगी

पूजा

नंद

चरन कमल सुख सार। किशोरी अब

आन परौं तोरे मोपे भानु किरपा

की

लाल-अराधत

सकल जगत आधार।

तुम्हरे

द्वार ॥

भाग ८९

Hinduism Discord Serve मात्रापुरः / त्यारे त्यारे कि कि प्राप्त क

प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध संख्या ७] प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) भगवान्का वास्तविक स्वरूप कैसा है—इस बातको सबको सत्ता और शक्ति देनेवाले, सबके अद्वितीय भगवान् ही जानते हैं या किसी अंशमें वे जानते हैं, कारण, सबसे परे और सर्वमय भगवान्का वर्णन कौन जिनको भगवान् जनाना चाहते हैं। आजतक जगत्में कर सकता है? कोई भी यह नहीं कह सका कि भगवान् ऐसे ही हैं, भगवान्ने गीतामें कहा है-न कोई कह सकता है और न कह सकेगा। यदि ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। कोई ऐसा कहनेका साहस करता है तो वह या तो मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥ भोला है, या आग्रही अथवा मिथ्यावादी है। ऐसा न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। होनेपर भी भगवान्के जितने वर्णन जगत्में हुए हैं, वे भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः॥ अपने-अपने स्थानमें सभी सच्चे हैं; क्योंकि महान् (९1४-५) परमात्मामें सभीका अन्तर्भाव है, जैसे अनन्त आकाशमें 'मुझ अव्यक्तमूर्तिके द्वारा यह सारा जगत् व्याप्त सभी मठाकाश, घटाकाश समाते हैं। किसी गाँवमें हो रहा है, सब भूत मुझमें हैं, परंतु मैं उनमें नहीं हूँ, वे सब भूत भी मुझमें नहीं हैं, मेरा यह ऐश्वरयोग होनेवाली घटनाको लेकर हम कहें कि जगत्में ऐसा होता है तो ऐसा कहना मिथ्या नहीं है; क्योंकि गाँव देखो कि सम्पूर्ण भूतोंका उत्पन्न और धारण-पोषण जगत्में ही है, अतएव वह जगत् ही है, परंतु यह करनेवाला होकर भी मैं स्वरूपत: उन भूतोंमें स्थित नहीं हैं।' बात नहीं कि जगत् वह गाँव ही है। फिर जगत्का तो वर्णन हो भी सकता है; क्योंकि वह प्राकृतिक, भगवान्के इस कथनमें परस्पर विरोधी बातें प्रतीत होती हैं, 'मैं सबमें हूँ और किसीमें नहीं हूँ, सब ससीम और सूक्ष्मबुद्धिके द्वारा आकलन करनेयोग्य है, परंतु अप्राकृतिक, असीम, अनन्त, अपार, अकल, मुझमें हैं और कोई भी मुझमें नहीं है।' इस कथनका अलौकिक परमात्माका वर्णन तो हो ही नहीं सकता, कोई अर्थ सहज ही समझमें नहीं आता। इसीलिये इसीलिये वेद उन्हें 'नेति-नेति' कहकर चुप हो जाते 'परमार्थ' और 'व्यवहार' का भेद करके इसकी व्याख्या की जाती है, परंतु यही तो भगवान्का 'ऐश्वरयोग' हैं। निर्गुण अक्षरब्रह्म, विकारशील और जड अपरा प्रकृतिमें स्थित निर्विकार परा प्रकृतिरूप जीवात्मा, अपरा है। हमारी विषयविमोहित जडबुद्धि इसे कैसे जान प्रकृति और उसके विकारसे उत्पन्न उत्पत्ति और विनाश सकती है? हमारे लिये जो असम्भव है, भगवान्के लिये वह सब कुछ सम्भव है। भगवान्में सब विरोधोंका धर्मवाले सब पदार्थ, भूतोंका उद्भव और अभ्युदय करनेवाला विसर्गरूप कर्म, व्यक्त जगतुका अभिमानी समन्वय है। इसीलिये तो भगवान्का किसी भी प्रकारसे सूत्रात्मा अधिदैव और इस शरीरमें अन्तर्यामीरूपसे किया हुआ वर्णन भगवान्के लिये सत्यरूपसे लागू स्थित विष्णुरूप अधियज्ञ—ये सब उस नित्य निर्विकार होता है। सिच्चदानन्दघन भगवान्के विशेष भाव हैं या उसके भगवान् निर्गुण भी हैं, सगुण भी, निराकार भी आंशिक प्रकाश हैं। अवश्य ही स्वभावसे ही पूर्ण हैं, साकार भी। वे निष्क्रिय, निर्विशेष, निर्लिप्त और होनेके कारण आंशिक प्रकाश होनेपर भी भगवद्रपमें निराधार होते हुए ही सृष्टि, स्थिति, संहार करनेवाले, सभी पूर्ण हैं। ऐसे सबमें स्थित, सर्वनियन्ता, सर्वाधार, सविशेष, सर्वव्यापी और सर्वाधार हैं। सांख्योक्त परस्पर

[भाग ८९ विलक्षण अनादि पुरुष और प्रकृति, चेतन और अचेतन देता है, उन्हींकी चर्चा करता है, उन्हींके नाम-गुणका दोनों शक्तियाँ, जिनसे सारा जगत् उत्पन्न होता है-गान करता है, उन्हींमें सन्तुष्ट रहता है और उन्हींमें भगवान्की ही परा और अपरा प्रकृति हैं। इन दो रमण करता है। इस प्रकार जब देह-मन-प्राण, काल-प्रकारकी प्रकृतियोंके द्वारा वस्तुत: भगवान् ही अपनेको कर्म-गुण, लौकिक और पारलौकिक भोग, आसक्ति, प्रकट कर रहे हैं। वे सबमें रहकर भी सबसे परे हैं। कामना, वासना सब कुछ उनके अर्पण कर देता है। वे ही सबको देखनेवाले उपद्रष्टा हैं, वे ही यथार्थ तब भगवान् उस प्रेमसे भजनेवाले भक्तको अपनी वह सम्मति देनेवाले अनुमन्ता हैं, वे ही सबका भरण-दिव्य बुद्धि दे देते हैं, जिससे वह अनायास ही उनको पोषण करनेवाले भर्ता हैं, वे ही जीवरूपसे भोक्ता हैं, समग्ररूपमें - पुरुषोत्तमरूपमें पा जाता है। वे ही सर्वलोक-महेश्वर हैं, वे ही सबमें व्याप्त भगवान्ने घोषणा की है कि मैं जैसा भक्तिसे परमात्मा हैं और वे ही समस्त ऐश्वर्य-माधुर्यसे परिपूर्ण शीघ्र मिलता हूँ, वैसा अन्य किसी साधनसे नहीं भगवान् हैं, वे एक होनेपर भी अनेक रूपोंमें विभक्त मिलता— हुए-से जान पड़ते हैं। अनेक रूपोंमें व्यक्त होनेपर भी न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्भव। एक ही हैं। व्यक्त, अव्यक्त और अव्यक्तसे भी परे न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥ सनातन अव्यक्त वे ही हैं; क्षर, अक्षर और अक्षरसे भी 'जिस प्रकार मेरी अनन्य भक्ति मुझे वशमें करती उत्तम पुरुषोत्तम वे ही हैं। वे अपनी ही महिमासे है, उस प्रकार मुझको योग, ज्ञान, धर्म, स्वाध्याय, तप महिमान्वित हैं, अपने ही गौरवसे गौरवान्वित हैं और और त्याग वशमें नहीं कर सकते।' अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं-इन भगवान्का यथार्थ स्वरूपज्ञान या दर्शन इनकी नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया। कृपाके बिना नहीं हो सकता। ये जिसपर अनुग्रह शक्य एवंविधो द्रष्टुं दुष्टवानसि मां यथा॥ करके अपना ज्ञान कराते हैं, वे ही इन्हें जान सकते भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन। हैं और कृपा भक्तोंपर ही व्यक्त होती है। भक्तिरहित ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥ कर्मसे, प्रेमरहित ज्ञानसे भगवान्का यथार्थ स्वरूप नहीं (११।५३-५४) जाननेमें आता। निष्काम कर्मसे भगवानुका ऐश्वर्यरूप 'हे परंतप अर्जुन! जिस प्रकारसे तुमने मुझको जाना जाता है और तत्त्वज्ञानसे उनका अक्षर परब्रह्मरूप, देखा है, इस प्रकारसे मैं न वेदोंसे (ज्ञानसे), न तपसे, परंतु उनके पुरुषोत्तम भावका तो अनन्य प्रेमभक्तिसे ही न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ। इस साक्षात्कार होता है। वैधी भक्ति करते-करते जब वह प्रकारसे मैं केवल अनन्य भक्तिसे ही तत्त्वसे जाना जा दिव्य प्रेमरूपमें परिणत होती है। जब भगवानुकी सकता हूँ, प्रत्यक्ष देखा जा सकता हूँ और अपनेमें अचिन्त्य शक्ति और अनिर्वचनीय ऐश्वर्यको जानकर प्रवेश करा सकता हूँ, अभिन्नभावसे अपने अन्दर भक्त केवल उन्हींको परम गति, परम आश्रय और मिला सकता हूँ।' परम शरण्य मानकर बुद्धिसे, मनसे, चित्तसे, इन्द्रियोंसे एक बात और है—ज्ञानके साधनमें भगवान् निर्गुण, और शरीरसे सब भाँति सर्वथा अपनेको उनके चरणोंमें निराकार, निरंजन, परम अज्ञेयतत्त्व हैं और ज्ञानयुक्त निवेदन कर देता है। जब वह उन्हींको मन दे देता है, कर्ममें भगवान् सर्वेशवर्यसम्पन्न, सर्वगुणाधार, सर्वाश्रय, उन्हींमें बुद्धि लगा देता है, उन्हींको जीवन अर्पण कर सर्वेश्वर, सृष्टिकर्ता, पालन और संहारकर्ता, नियन्त्रणकर्ता

संख्या ७] प्रेमभक्तिमें भगवान् और भक्तका सम्बन्ध प्रभु हैं, परंतु भक्तिमें भगवान् ये सब होते हुए ही भक्तके भगवान् इतना ही नहीं करते, वे स्वयं भक्तका निजजन हैं। भक्ति विश्वातीत और गुणातीत तथा योगक्षेम वहन करते हैं और उसके साथ खेलते हैं, खाते विश्वमय और सर्वगुणमय परमात्माका अवतरण कराकर, हैं, सोते हैं तथा प्रेमालाप करते हैं। कभी वे पुत्र बनकर उन्हें नीचे उतारकर भक्तके साथ आत्मीयताके अत्यन्त गोदमें खेलते हैं-मधुर बन्धनमें बाँध देती है। भक्तिका साधक—प्रेमी भक्त ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद। भगवान्को केवल सच्चिदानन्दघन ब्रह्म या सर्वलोक सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥ महेश्वर ऐश्वर्यमय स्वामी ही नहीं जानता, वह उन्हें कभी राधाजीके साथ झूला झूलते हैं-अपने परम पिता, स्नेहमयी जननी, प्राणोपम सुहृद्, प्यारे झूलत नागरि नागर लाल। सखा, प्राणेश्वर पति, प्रेममयी प्राणेश्वरी, जीवनाधार पुत्र मंद मंद सब सखी झुलावित गावित गीत रसाल॥ आदि प्राणों-के-प्राण और जीवनों-के-जीवन परम कभी माता-पिताकी वन्दना और उसकी सेवा आत्मीयरूपमें प्राप्त करता है। भगवान्के दिव्य स्नेह, करते हैं। अलौकिक प्रेम, अनुपमेय अनुग्रह, परम सुहृदता, प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।। अनिर्वचनीय दिव्य नित्य सौन्दर्य और नित्य नवीन आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥ माधुर्यका साक्षात्कार और उपभोग भक्तिके द्वारा ही कहीं मित्रोंके साथ खेलते हैं, कहीं प्रियाके साथ किया जा सकता है, निरे ज्ञान और कर्मके द्वारा नहीं। प्रेमालाप करते हैं, कहीं भक्तके लिये रोते हैं। कहीं भक्तकी सेवा करते हैं, कहीं भक्तकी बड़ाई करते हैं, जिनमें भक्ति नहीं है, उनकी तो कल्पनामें भी यह बात नहीं आ सकती कि भगवान् हमारे पिता-पुत्र, मित्र-बन्धु कहीं भक्तके शत्रुओंको अपना शत्रु बतलाते हैं, कहीं और जननी-पत्नी भी बन सकते हैं। इसी प्रेमरूपा भक्तोंकी स्तुति सुनते हैं और कहीं भक्तोंको ज्ञान देते भक्तिके प्रभावसे भगवान्के दिव्य अवतार होते हैं, इसीके हैं। यह आनन्द भक्त और भगवान्में ही होता है। प्रतापसे भक्त अपने भगवान्की दिव्य लीलाओंका आस्वादन भक्त और भगवान्में न मालूम क्या-क्या रसकी बातें होती हैं, न मालूम कैसे-कैसे रहस्य खुलते हैं और न करता है और इसीके कारण भगवान्को जगत्के सामने अपना महत्त्व छिपाकर परम गोपनीय भावसे भक्तके मालुम वे भक्तको कब किस परम दुर्लभ दिव्य लोकमें सामने अपने परम तत्त्वका अपने ही श्रीमुखसे प्रकाश ले जाकर वहाँका आनन्द अनुभव कराते हैं। वे उसके करना पड़ता है। तर्कशील अभक्तोंके लिये यह तत्त्व हो जाते हैं और उसको अपना बना लेते हैं। उसके हृदयमें आप बसते हैं और उसको अपने हृदयमें बसा सर्वथा गुप्त ही रहता है। भगवान्का अपने प्रेमी भक्तोंके साथ बिलकुल लेते हैं। सम्पूर्ण तत्त्वज्ञान, सम्पूर्ण आत्मानुभूति, सम्पूर्ण खुला व्यवहार होता है; क्योंकि वहाँ योगमायाका एकात्मबोध सब यहाँ दिव्य प्रेमके रूपमें परिणत हो आवरण हटाकर ही लीला करनी पड़ती है। उनके सामने जाते हैं और मुक्ति? मुक्ति तो ऐसे भक्तकी सेवा करनेके सभी तत्त्वोंका प्रकाश हो जाता है। निर्गुण-निराकार लिये पीछे-पीछे फिरती है, उसके चरणोंमें लोटती है-दोनों ही रूपोंका परम रहस्य भगवान् खोल देते हैं। यदि भवति मुकुन्दे भक्तिरानन्दसान्द्रा इसीलिये भगवान्ने भक्तिकी इतनी महिमा गायी है और विलुठति चरणाग्रे मोक्षसाम्राज्यलक्ष्मीः॥ इसीलिये परम चतुर ऋषि-मुनि भी भक्तिके लिये 'जिसकी श्रीमुकुन्दके चरणोंमें परमानन्दरूपा भक्ति लालायित रहते हैं। होती है, मोक्षसाम्राज्यश्री उसके चरणोंमें लोटती है।'

िभाग ८९ गाढ़ी कमाई (श्रीकेशवनारायणजी अग्रवाल) पुरानी बात है—उस समय भारतवर्ष धन-धान्यसे चमक और झंकारसे उसकी आँखें और कान मुग्ध हो पूरित था। सर्वत्र दूधकी निदयाँ बहती थीं—'गरीबी' गये और वह उसीके यहाँ नौकर हो गया। उसके और 'बेरोजगारी' शब्द कोषमें ही पाये जाते थे। मालिककी दुकान नगरके प्रधान देवालयके समीप थी। पास-पड़ोसके सभी देश सभ्यता तथा संस्कृतिमें उससे वहाँ झुण्ड-के-झुण्ड यात्री आते, जो तीर्थ-पुरोहितोंकी पिछड़े हुए थे। वे उसे कला-कौशलका भण्डार समझते दक्षिणाके हेतु रुपयोंके बदले छोटी खैरीज लेते थे और उसके व्यवसायको सदा चलता रखते थे। राजाके थे और उससे विभिन्न कलाओंकी शिक्षा प्राप्त करनेके हेतु अपने नवयुवकोंको भेजते थे। धनोपार्जनके हेतु खजानेसे थोड़ी-सी मुहर और रुपयोंके बदले ढेर-के-ढेर पैसे और छोटी खैरीज लाना उसका काम था। भी दूर-पाससे लोग आते रहते—भारत किसीको विमुख थोड़े दिनों बाद पैसोंको गिनकर ढेरी लगाना उसे न लौटाता था। पश्चिमी सीमाप्रान्तके पड़ोसी देशके चार किसानोंने सिखाया गया। अपने काममें उसका खूब मन लग भारतमें अपना भाग्य आजमानेका निश्चय किया। उनके गया। गाँवसे गुजरनेवाले राहगीर भारतकी समृद्धिकी गाथाएँ तीसरा मित्र कसरती जवान था। उसके बलिष्ठ पुद्रे नित्य सुनाया करते थे और वे चारों मित्र थोड़े परिश्रमसे मेहनतका काम खोजते थे। वह एक गल्ला अनाजके बहुत धन जोड़नेके इस प्रलोभनको बहुत कालतक न व्यापारीके यहाँ जा पहुँचा। उसके बलिष्ठ शरीरको रोक सके और एक दिन वे चारों चल पडे। देखकर उस व्यापारीने तुरंत उसे कामपर रख लिया। सीमाप्रान्तके निकटवर्ती पंचनद देशमें अपना कार्यक्षेत्र सैकड़ों बोरे गाड़ियोंसे उतारकर गोदाममें रखना, गोदामसे बनानेकी उन लोगोंने ठानी। पच्चीस दिनकी यात्रा पूरी निकालकर गाडियोंपर लादना उसका काम था और उसे करके वे एक वाणिज्य-व्यापारके केन्द्रमें पहुँचे, जहाँ इसमें बड़ा आनन्द आता था।

्रास्नांnguism Discord Server https://dscoog/dharma । MADE WITH LOVE BY Avinash/Shi

चतुर्दिक् चहल-पहलसे जनसमुदाय समुद्रकी लहरोंकी

भाँति हिलोरे लिया करता था। पहाडी देशके निवासी

स्वभावत: मेहनती होते हैं-शीघ्र ही उन्हें अपनी रुचिके अनुकूल व्यवसाय मिल गया।

पहला मित्र चतुर और विवेकपूर्ण था। वह वस्तुका मूल्य ऑंकनेमें प्रवीण था। उसने एक सर्राफके यहाँ नौकरी की। मालिकके यहाँ कोठे-के-कोठे सोनेकी सिलोंसे भरे थे। उन्हीं सिलोंको नित्य निकालना, रखना,

निहाईपर रखकर काटना, कसौटीपर कसना, यही काम उसे सिखाया गया और वह शीघ्र अपने काममें प्रवीण हो गया। दूसरा मित्र एक रेजगारी या खैरीजके बेचनेवालेके

चौथा मित्र शरीरका स्थूल था और बुद्धि भी उसकी स्थूल ही थी। उसने एक शाकभाजीके व्यवसायीके यहाँ नौकरी की। सैकडों बीघे खेतोंमें मालिककी

तरकारियाँ लहलहाती थीं। जिधर निगाह जाती, उधर उसके हरे-भरे खेत लहलहाते थे। बस, इसका यही काम था कि नित्य गाड़ी भरकर तरकारी लाये और शहरमें बेचकर पैसे खडे करे। चारों मित्र खूब मेहनतसे काम करने लगे और कुछ कालके लिये अपने पहाड़ी गाँवको भूल ही गये। थोड़े

खर्चमें उनकी आवश्यकताएँ पूरी हो जातीं और शेष धन संचित होनेके लिये बच रहता। चारों मित्र मन लगाकर संचय करने लगे।

संख्या ७] क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	,
गुनी बड़ी चीजोंको खरीद सकता है। वे चमकते हुए	 पालक, मैथी आदि शाकोंके दो-तीन रुपये ही वसूल
ु . गोल सिक्के अपने नामको सार्थक करते हुए हर	होते। लौटते समय निशाकी फैलती हुई चादरके नीचे
एकके मनपर अपनी मुहर लगा देते थे। बस, उसने	जब उसकी खाली गाड़ियाँ घड़-घड़ शब्द करती हुई
अपनी कमाई मुहरोंके रूपमें ही संचित करनेका निश्चय	तेजीसे लौटतीं तो वह अपने मनसूबे बनाया करता
किया।	और प्रतिमास बचनेवाले वेतनको संचय करनेका उपयुक्त
दूसरा मित्र नित्य खजानेसे पैसोंके ढेर-के-ढेर	माध्यम सोचता। उसके दिमागमें भिन्न-भिन्न तरकारियोंका
लाता और उन्हें दूकानके पक्के फर्शपर उड़ेलता तो	मूल्य घूमा करता। वह सोचता—'एक गाड़ी पालक
उनकी चमक और झंकार उसे वीणाके रागका मजा	दो रुपयेमें मिलती है। हमारे गाँवमें किसीने इसका
देती। जब वह चार अंगुल ऊँची पैसोंकी ढेरियाँ चुनकर	नाम भी नहीं सुना। सालभरकी कमाईमें एक गोदाम
ताँबेका फर्श बिछा देता तो उसके नेत्र हर्षसे चमक	पालकसे भर जायगा। कुछ लौकी, बैगन, कुम्हड़ा,
उठते। वह अपनी कमाई स्वभावत: पैसोंके रूपमें इकट्ठी	आलू भी ले लूँगा—जब घर लौटूँगा तो कोड़ियों
करने लगा। शीघ्रतासे बढ़नेवाला पैसोंका ढेर उसके	गाड़ी भरकर कमाई लाद ले चलूँगा। गाँववाले आँखें
आनन्दको बढ़ानेका साधन बन गया।	फाड़-फाड़कर देखेंगे—ओह! मैं कैसा सौभाग्यशाली
तीसरा मित्र बड़ा परिश्रमी था। जबतक वह दो-	समझा जाऊँगा।' बस, उसने एक बड़ा-सा हाता
चार सौ बोरे इधरसे उधर न रख लेता तबतक उसे	किरायेपर लिया और उसमें पालकके सागसे कोठरियाँ
अच्छी नींद न आती। पर्याप्त परिश्रमसे जब उसके	भरने लगा।
अंग थक जाते तो वह खूब तानकर भोजन करता	कभी-कभी चारों मित्र इकट्ठे होते तो कमाईपर
और हजारों बोरोंकी ऊँची मचानपर अपने शिथिल	बात चलती। पहला मित्र कह देता—'मेरी कमाई तो मेरी
शरीरको स्वतन्त्रतापूर्वक फैलाकर गहरी निद्राका आनन्द	मुट्ठीमें है।' तीनों मित्र उसकी बातपर हँसते और उसे
लूटता। कल्पना अपने पंख फैलाकर उसे अपने साम्राज्यमें	निकम्मा, फजूलखर्च अथवा झूठा समझते।
सैर करनेको निमन्त्रित करती और वह अपने आपको	दूसरा मित्र कहता—' मेरी कमाई गठरियोंमें झनझनाती
थोड़ी देरके लिये उस अन्नसमूहका स्वामी समझने	है। जब मैं गाँव पहुँचूँगा तो अपनी कमाई पटेलके
लगता। गर्वसे उसकी छाती फूल जाती और वह उस	फर्शपर उड़ेल दूँगा—सारे गाँवमें झंकार गूँज जायगी
दिनका स्वप्न देखता जब अनाजसे लदे हुए ऊँटोंकी	और साथ ही मेरी कीर्ति भी चतुर्दिक् गूँज उठेगी।'—
लम्बी पाँत उसके पीछे-पीछे चलती होगी और वह	और वह हर्षसे नेत्र मूँद लेता।
मुसकराता हुआ अपने गाँवमें प्रवेश करेगा। बस,	तीसरा मित्र इसपर हँस देता और कहता—'बस,
उसकी कमाई अनाजके बोरोंकी शक्लमें एक किरायेके	तुम्हारी कमाई गठरियोंतक ही सीमित है—अरे, मेरी
कोठेमें इकट्ठी होने लगी।	कमाई बोरोंकी थाकोंमें भरी रखी है। जब मैं घर लौटूँगा
चौथा मित्र नित्य गाड़ियाँ भर–भरकर तरकारियाँ	तो मेरे पीछे एक कोड़ी ऊँट पाँत बाँधकर चलेंगे।
नगरमें लाता और सन्ध्यातक उसके रुपये बनाकर	महीनोंतक यही चर्चा गाँवमें रहेगी और लड़के खेलमें
वापस लौटता। उस समयके हिसाबसे एक गाड़ी	मेरी नकल किया करेंगे।'—और उसका बलिष्ठ शरीर
आलू दस रुपयेमें बिक जाते—एक गाड़ी बैगन, कुम्हड़ा,	चार अंगुल फूल जाता।

भाग ८९ चौथा मित्र ठहाका मारकर हँसता और फडककर पहला मित्र मुसकराता हुआ प्रसन्नचित्त आ रहा कहता—'बडी शेखी हाँकते हो। अरे, मेरी कमाईसे था-उसके साथ गठरी-पोटली कुछ न थी। उसे गोदाम भर रहे हैं और जब मैं गाँव लौटूँगा तो मेरे पीछे खाली हाथ देखकर अन्य मित्र हँस पड़े—'वाह जी! बीस, चालीस, साठ-नहीं-नहीं अस्सी गाड़ियोंकी दस वर्ष बाद घर लौटने चले, सो भी खाली हाथ-बारात चलेगी। गाँवके फाटकसे चौपालतक मेरी गाड़ियाँ-अपने स्त्री-बच्चोंकी दस वर्षकी कमाईके लिये लालायित ही-गाड़ियाँ दिखायी देंगी। क्या इस दृश्यको गाँववाले दृष्टिके सामने रखनेके लिये आपके पास क्या है सहजमें भूल जायेंगे-इसकी गाथा नाती-पोतोंतक पहुँचेगी जनाब!' पहले मित्रने लापरवाहीसे हँसते हुए उत्तर और स्त्रियाँ इसके गीत बना-बनाकर गायेंगी।'—और दिया—'आप अपना घर सम्हालिये—मेरी कमाई मेरे वह हर्षसे उछल पड़ता। साथ है।' एक-दूसरेकी बातोंपर कोई आश्चर्य करता, कोई दूसरा मित्र अपनी कमाईको एक घोड़ेपर लादकर लाया था। घोडेको हाँकनेके बहाने जब वह अपना बेंत ईर्ष्या करता, कोई मूर्ख समझता। अपना असली भेद कोई किसीको न बताता। पैसोंकी गठरीमें मार देता तो पैसोंकी झंकार उसके हँसी-खुशीके दस वर्ष यों ही सहजमें बीत गये। मुखमण्डलपर हँसीकी रेखा ला देती। एक दिन चारों मित्र नदीतटपर एकत्रित होकर गोष्ठी कर तीसरा मित्र मिलनेके स्थानपर पहलेसे ही आ गया रहे थे। बात-ही-बातमें घरकी स्मृतिपर चर्चा चल पडी। था। उसके साथ बारह ऊँट अनाजके बोरोंसे लदे हुए गोदके बच्चे अब बड़े हुए होंगे—बड़े बच्चे अब युवा थे। वह सूखी हँसी हँसकर कहने लगा—'क्या कहूँ होकर घरका काम सम्हालते होंगे। पतिप्राणा स्त्रियाँ मित्र! आज मेरे साथ सोलह ऊँट होते, परंतु चार नित्य बाट देखती होंगी—स्नेही मित्र अधिक समय ऊँटोंका अनाज हरामखोर मूसोंके पेटमें चला गया। फिर बीतनेके कारण चिन्तित होंगे-बूढ़े माँ-बाप रो-रोकर भी मैं तुम दोनोंसे तो अच्छा ही हूँ।' व्याकुल होते होंगे। बस, मित्रोंका एकत्रित विचारप्रवाह चौथा मित्र अभीतक नहीं आया था। तीनों मित्र एक प्रबल धारामें बह निकला और उसकी तेज धारने नियत स्थानपर बैठकर उसकी बाट देख रहे थे और उनके पैर उखाड दिये। उन्होंने मिलकर यही निश्चय उसके न आनेके विषयमें अटकल लगा रहे थे, तबतक किया कि अब शीघ्र ही घर लौट चलना चाहिये। शीघ्र दूरपर उन्हें बैलगाड़ियोंकी एक पाँत-सी आती दिखायी ही एक शुभ दिन नियत किया गया और नगरके बाहर दी। पास आनेपर उन्होंने पहचाना कि वे उनके मित्रके एक स्थानपर सब मित्रोंने उस दिन प्रात:काल मिलनेका साथ आनेवाली गाडियाँ हैं। पच्चीस गाडियोंके आगे-वचन दिया। आगे चौथा मित्र रोनी सुरत लिये आ रहा था। मित्रोंने आखिर वह दिन भी आ गया। दस वर्षमें नये हँसकर उसका स्वागत किया तो वह रो उठा। तीनों मित्रोंसे मोहबन्धन बँध चुके थे। उनके विछोहने घर मित्रोंने अचरजसे पूछा—'क्या हुआ भाई? कुशल तो लौटनेके आनन्दको क्षणभरके लिये दबा दिया, परंतु एक है ? क्या मालिकने कुछ बेईमानी की ?' चौथे मित्रने आँसू पोंछते हुए कहा—'नहीं मित्र! बार नगरका फाटक पार करनेपर जब घर लौटनेका मार्ग नेत्रोंके सामने दूरतक फैला हुआ दिखायी दिया तो मालिकने कोई बेईमानी नहीं की-वरं उन्होंने तो बिदाईमें पाँच गाड़ी आलू दिये हैं। शेष बीस गाड़ी जो प्रियजनोंसे पुनः मिलनका आह्लाद उनके पैरोंकी गतिको तीव्र करने लगा। आप देखते हैं, वे अस्सी गाडी सम्पत्तिका बचा-खुचा

संख्या ७] गाढ़ी क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	कमाई ************************************
भाग है। क्या करूँ मेरी तकदीर ही फूट गयी, जो मेरी	
कमाईका तीन चौथाई भाग अकारथ गया।'—उसकी	क्रमशः कम होती, पहले मित्रकी सम्पत्ति किसीको न
आँखोंसे टपाटप आँसू गिरने लगे।	तो दिखायी ही देती न उसके घटनेका ही कुछ अनुमान
उसने साँस खींचकर फिर कहा—'मुझे दु:ख तो	होता। हर तीसरे-चौथे दिन एक खाली ऊँट लौटता और
इस बातका है कि मैंने जिसे बड़े लाड़चावसे रखा था,	बैलगाड़ी तो दो-एक हर रोज ही लौटती थीं। पैसोंकी
उसीने अन्तमें मुझे धोखा दिया—ओह! मैंने पालकके	गठरियाँ अब ढीली पड़ती जाती थीं और यद्यपि अब
सागको बरसोंसे कोठोंमें आजके दिनके लिये रखा था—	उनमेंसे खूब झंकार निकलती थी, परंतु वह झंकार अब
परंतु चालीस कोठोंमेंसे आज एक पत्ती भी हाथ न	सम्पत्ति घटनेकी द्योतक होनेके कारण कानोंको प्यारी
लगी—जिसे खोला, उसमें बदबूके कारण खड़ा होना	नहीं मालूम देती थी। ज्यों-ज्यों रास्ता कटता पहले
कठिन हो गया। फिर उन चालीस कोठोंके किरायेके	मित्रकी प्रसन्नता बढ़ती जाती, परंतु शेष तीनों मित्रोंकी
लिये मुझे बीस गाड़ी आलू देने पड़े।' वह माथा ठोंककर	चिन्ता उसी मात्रामें बढ़ती जाती।
फिर रोने लगा।	अब घर पहुँचनेके लिये पाँच दिनका रास्ता शेष
तीनों मित्रोंने उसे समझा–बुझाकर शान्त किया	था। अभीतक समतल भूमिपर होकर रास्ता जाता था,
और जब उसे यह बताया कि इतना कम होनेपर भी	परंतु अब शेष पाँच दिनका मार्ग पहाड़ी भूमिपर होकर
उसके पास अब भी सबसे अधिक सम्पत्ति है तो उसके	था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ मानो रास्ता रोके खड़े हुए थे।
चेहरेपर हँसीकी रेखा आ गयी और स्पर्धाकी भावनाने	पगडंडीका सहारा लेकर चलना था। पहला मित्र तो
उसके दु:खको भुला दिया।	स्वतन्त्रतापूर्वक पगडंडीके मार्गपर चढ़ने लगा। उसके
बस, चारों मित्र प्रसन्नहृदय घरकी ओर जानेवाले	ै पैर पहाड़ी भूमिका स्पर्श करते ही अधिक तेजीसे उठने
मार्गपर अग्रसर होने लगे। सन्ध्या होते-होते वे पहले	लगे और उसके ओंठोंसे स्वतन्त्रताका मधुर राग निकलने
पड़ावपर जा पहुँचे। पहला मित्र बेफिक्रीसे भोजन करके	लगा।
आरामसे जा सोया। दूसरे मित्रको अपने घोड़े और	दूसरे मित्रका बोझा पहले आधा रह गया था।
साईसके लिये चारा-दाना और भोजन खरीदनेके लिये	उसका घोड़ा कोई पहाड़ी टट्टू तो था नहीं, फिर भी
पैसोंकी गठरी खोलनी पड़ी और दो मुट्ठी सम्पत्ति कम	धीरे-धीरे आगे बढ़ा। तीसरे मित्रके पास अब छ: ऊँट
करनी पड़ी। तीसरे मित्रको बारह ऊँट और उनके बारह	शेष थे, परंतु उनमेंसे एक भी एक कदम आगे बढ़नेमें
हँकवानोंके भोजनके निमित्त एक बोरा अनाज पड़ाववालेके	असमर्थ था। आखिर उसने एक बोरा अनाज अपनी
हाथ बेचना पड़ा। चौथे मित्रको पच्चीस गाड़ीवान तथा	पीठपर उठाया और पहाड़ी मार्गपर अग्रसर हुआ, परंतु
पचास बैलोंके भोजनके लिये दो गाड़ी आलू बेचना पड़ा	उसे शीघ्र ही यह पता चल गया कि गोदामसे गाड़ीपर
और दो गाड़ी आलूके साथ उसका एक सेर खून सूख	बोरे लादना और पहाड़पर बोरा लेकर चढ़ना दो भिन्न
गया। प्रात:काल जब उसकी दो खाली गाड़ियाँ गाँवकी	काम हैं। सौ कदम चढ़ना उसके लिये कठिन हो गया
ओर चलनेके बजाय नगरकी ओर लौटने लगीं तो वह	और वह बोरा पटककर बैठ गया। अन्तमें उसने एक
विक्षिप्तकी भाँति टकटकी बाँधकर उनकी ओर देखता	गठरीमें अनाज बाँध लिया और सरपर रखकर चल
रह गया।	दिया।
इसी तरह नित्य सन्ध्यासमय जब पड़ाव आता तो	चौथा मित्र नित्य खाली गाड़ियाँ लौटती देख-

देखकर विषादसे जलता रहता था। उसके शरीरमें रक्त चुप्पी साधकर रह गये। तीसरे मित्रने दुखी चित्तसे अपनी अनाजकी गठरी खोलकर ज्यों ही फर्शपर तो मानो रहा ही न था। जब वह पहाड़के निकट पहुँचा तो उसके साथ केवल एक गाड़ी रह गयी थी, जो उड़ेली, त्यों ही उसमेंसे उड़नेवाली धूल गाँववालोंके नथुनोंमें घुसने लगी और सब लोगोंने उधरसे मुँह फेर पहाडी मार्गपर एक कदम आगे नहीं चल सकती थी। उसने तीसरे मित्रको एक बोरा अनाज पीठपर लादकर लिया और चौथा मित्र क्लान्त और थका हुआ, चढते देखा तो वह भी एक बोरा आलू लेकर चलनेको आत्मग्लानिकी अग्निसे धधकता हुआ, गाँववालोंके प्रस्तुत हुआ, परंतु कमजोरीसे काँपते हुए पैर शरीरके सामने पछाड खाकर गिर पडा और उसके मुँहसे एक चुल्लू रक्त फर्शपर निकल पड़ा। वही रक्त अपनी बोझको भी पहाड़ी मार्गपर कठिनाईसे ले चल सकते थे। उसका हठ पूरा करनेके लिये गाड़ीवानने एक बोरा कमाईरूपमें रखकर उसके प्राणपखेरू शरीर छोड़कर उसकी पीठपर चढ़ाया तो वह इस बुरी तरह गिरा कि उड गये! यदि भगवान् रक्षा न करते तो वहीं उसका प्राणान्त हो नोट-चारों मित्र सत्, सत्+रजस्, रजस्+तमस्, जाता। हताश और खिन्नचित्त वह खाली हाथ पहाडपर और तमस् हैं। पहाडी प्रदेशका गाँव आत्माका चढने लगा। पहला मित्र उसे तथा तीसरे मित्रको बारी-निवासस्थान है और पंचनद देशका नगर पांचभौतिक बारीसे सहारा देता चलता था। दूसरे मित्रका घोड़ा भी शरीर है। नगरसे लौटकर घर आना शरीर त्यागकर दूसरे दिन आगे न बढ़ सका और उसे भी अपनी गठरी आत्माका लौटना है। सत्की कमाई भूलोकमें लोगोंपर खोलकर एक पोटली पैसे बाँधने पड़े। पैसोंकी झंकार प्रकट नहीं होती, परंतु वह अक्षतरूपमें आत्माके साथ

भाग ८९

सुननेकी अन्तिम अभिलाषा पूरी करनेके लिये उसने शेष सत्यलोकतक जाती है। सत्+रजस्की कमाई उन पुण्योंके पैसोंमेंसे कुछ तो घोड़ेवालेको दिये और बाकी सब रूपमें होती है, जो मनुष्य यश और कीर्तिके लिये पहाड़परसे नीचे उड़ेल दिये जो झंकार करते हुए शीघ्र करता है-उसके कान सदा प्रशंसारूपी झंकारको अदुष्ट हो गये। सुननेके लिये लालायित रहते हैं। ऐसी कमाई अपनी आखिर वह शुभ दिन आया, जब चारों मित्रोंने चमक खो देती है और स्वर्गके आगे उसकी गति अपने गाँवमें प्रवेश किया। उनके आनेकी खबर गाँवमें नहीं होती। रजस्+तमस्की कमाई अधिकतर मार्गमें विद्युत्-गतिसे फैल गयी। गाँवके बालक, युवा, वृद्ध ही व्यय हो जाती है और संकेतमात्रमें ऊपरके लोकोंमें सब मुखियाकी चौपालमें एकत्रित हो गये और बड़े पहुँच सकती है—भुवर्लीकके आगे उसकी गति नहीं

प्रेमसे उनका स्वागत किया। कुशल-प्रश्न और इधर-उधरकी बातोंके बाद मुखियाने कमाईकी बात छेड़ी।

पहले मित्रका चेहरा प्रसन्नतासे खिल उठा—उसने है। ऐसी कमाई मृत्युके उपरान्त चिन्ता तथा सन्तापका अपनी कमरसे बसनी खोली और पचास चमकती हुई कारण बनती है और ऐसे मनुष्यकी आत्मा केवल अशरिफयाँ फर्शपर उड़ेल दीं। गाँववालोंके मुँहसे एक हाजिरी देकर तुरंत भूलोकको लौट आती है। समय साथ 'शाबास' निकल पड़ा। दूसरे मित्रने सूखी हँसी रहते हम सबको सोच लेना चाहिये कि हमारी कमाई

होती। तमस्की कमाई तीन चौथाई मृत्युके पहले ही

नष्ट हो जाती है और शेष मार्गमें समाप्त हो जाती

हँसकर अपनी पोटली खोली और समयके प्रभावसे किस ओर जा रही है—अन्तमें पछताने और पछाड़ कालोतपड़े।इस Discord Server of The structure of the control of the control

साधकोंके प्रति— संख्या ७] साधकोंके प्रति— [एक निश्चयकी महिमा] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) भोग और ऐश्वर्यमें आसक्त रहनेवाले पुरुषोंका उसका एक ही निश्चय होता है कि 'हमें तो ऐसा निश्चय भी नहीं होता कि हमें परमात्माकी प्राप्ति परमात्मतत्त्वको ही प्राप्त करना है और यही हमारे करनी है, फिर उन्हें तत्त्वकी प्राप्ति होना तो बहुत दूरकी जीवनका ध्येय है।' बात है— जिनका ऐसा एक निश्चय नहीं है, जो संसारके भोग और संग्रहमें आसक्त हैं, उनकी बहुत बुद्धियाँ भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥ होती हैं और वे बुद्धियाँ भी अनन्त शाखाओंवाली होती हैं अर्थात् उनकी बुद्धियाँ भी अनन्त होती हैं (गीता २।४४) और एक-एक बुद्धिकी शाखा भी अनन्त होती है। यत्न करते हुए भी वे इस परमात्मतत्त्वको नहीं जान सकते—'यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्य-जैसे-पुत्र मिले, यह एक बुद्धि हुई और पुत्र-प्राप्तिके लिये किस औषधका सेवन करें। किस मन्त्रका अथवा चेतसः॥' (गीता १५।११) कबतक? जबतक कि भोग और संग्रहमें आसक्ति है अर्थात् जबतक सांसारिक किस जप आदिका अनुष्ठान करें अथवा किस संतका पदार्थींसे सुख लेते रहें और रुपयोंका संग्रह बना रहे— आशीर्वाद लें अथवा और कहाँकी यात्रा करें, जिससे ये भावनाएँ भीतरमें बनी हैं, तबतक परमात्मतत्त्वको पुत्रकी प्राप्ति हो। तात्पर्य यह है कि पुत्रकी प्राप्ति, स्पर्श नहीं कर सकते और परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति ही यह तो एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके अनेक करना है-ऐसा उनका निश्चय भी नहीं हो सकता। उपाय उस बुद्धिकी अनन्त शाखाएँ हुईं। इसी तरह कारण कि उनके हृदयमें परमात्माके स्थानपर धन और धनकी प्राप्ति एक बुद्धि हुई और उसकी प्राप्तिके भोग आकर बैठ गये हैं। 'सुख भोगना है और सुख-लिये व्यापार करना, नौकरी करना, चोरी करना, डाका भोगके लिये संग्रहकी आवश्यकता है'—यह संग्रह और डालना, ठगाई करना, धोखा देना आदि उस बुद्धिकी भोगकी रुचि बहुत घातक है। धनका उपयोग अपने और अनन्त शाखाएँ हुईं। ऐसे पुरुषोंका परमात्माकी प्राप्तिका औरोंके निर्वाहके लिये खर्च करनेमें है और धनका संग्रह निश्चय नहीं हो सकता। तो केवल पतन करनेवाला है। संग्रह करनेकी जो रुचि गीताजीमें भगवान्ने परमात्माकी प्राप्ति-विषयक है कि मेरे पास इतनी वस्तुएँ हो जायँ, इतने रुपये हो एक निश्चयकी बड़ी भारी महिमा गायी है। इतनी जायँ—यह बहुत ही बाधक है। विलक्षण महिमा बतायी है कि जिसकी महिमा कही रुपयों और पदार्थींके संग्रहकी रुचिकी तो बात नहीं जा सकती। 'अपि चेत्स्द्राचार:'—सांगोपांग ही क्या है। पढ़ाई करके ज्ञान अधिक संग्रह कर लूँ, दुराचारी, जिसके दुराचरणमें कोई कमी नहीं है। जो बहुत पढ़ाई कर लूँ, बहुत शास्त्र पढ़ लूँ, इस प्रकार झूठ, कपट, बेईमानी, अभक्ष्य-भक्षण, वेश्या-गमन, पढ़ाईके संग्रहकी भावना जबतक रहेगी, तबतक मनुष्य जुआ खेलना, चोरी, व्यभिचार आदि जितने दुराचार परमात्मतत्त्वको जान नहीं सकता और उसकी प्राप्तिके सम्भव हैं, सब करनेवाला है। ऐसा पुरुष भी यदि विषयमें निश्चय भी नहीं कर सकता। जो अपना परमात्माकी ओर ही चलनेका निश्चय कर ले तो कल्याण चाहता है, उसकी बुद्धि एक ही होती है, भगवान् कहते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये—

भाग ८९ ******************* 'साधुरेव स मन्तव्यः।' विवेककी महिमा है। यह सत्य है कि प्राय: पापियोंका ऐसा निश्चय हुआ नहीं करता; परंतु ऐसा नहीं है कि ऐसे दुराचारीको साधु क्यों मानना चाहिये? भगवान् आज्ञा देते हैं कि उसको साधु ही मानना चाहिये; क्योंकि पापी ऐसा निश्चय नहीं कर सकते। महान्-से-महान् **'सम्यग्व्यवसितो हि सः'** (गीता ९।३०) 'उसने पापी अपना उद्धार कर सकता है। जबतक मृत्युकाल नहीं आया है, तबतक इस मनुष्यमें यह शक्ति है कि वह परमात्माकी प्राप्तिका एक निश्चय कर लिया है।' अब उस निश्चयके अनुसार उसका जीवन धार्मिक हो भगवत्प्राप्तिका निश्चय कर सकता है; परंतु भोगोंका, जायगा। उसका एक लक्ष्य बन गया, एक ध्येय बन गया धनका महत्त्व हृदयमें रहते हुए परमात्माकी प्राप्तिका कि अब कुछ भी हो जाय, एक भगवत्प्राप्ति ही करनी निश्चय नहीं कर सकता। है। ऐसे पुरुषको 'सम्यग्व्यवसितो हि सः' (जिसने यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि किये हुए अपने जीवनका लक्ष्य भलीभाँति निश्चित कर लिया है) पाप मनुष्यको भगवानुकी ओर जानेमें नहीं रोक रहे कहते हैं। हैं। इसी तरह सांसारिक पदार्थ भी भगवानुकी ओर एक प्रश्न उठता है कि भोग और ऐश्वर्यके संग्रहमें जानेमें नहीं रोक रहे हैं, परंतु वर्तमानमें भोगोंका जो जो आसक्त हैं, उनका तो परमात्माकी प्राप्तिका निश्चय महत्त्व अन्त:करणमें बैठा हुआ है, वह बाधा दे रहा है। भोग उतना नहीं अटकाते, जितना भोगोंका महत्त्व नहीं हो सकता और पापी-से-पापी भी ऐसा निश्चय कर अटकाता है। अटकानेमें आपकी रुचि—नीयत प्रधान सकता है—इन दोनों बातोंमें विरोध प्रतीत होता है। बात ठीक है। इसीलिये 'अपि चेत्' पद श्लोकमें आये हैं। है। पापीने पाप बहुत किये; परंतु अब उसकी रुचि-साधारणतया पापी लोगोंकी भजनमें रुचि नहीं होती-नीयत पाप करनेकी नहीं रही। अब उसने निश्चय कर **'न मां दुष्कृतिनो मृढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः।'** (गीता लिया। एक परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है। इसलिये ७।१५) पापी लोग मेरा भजन नहीं करते, यह सामान्य उसे 'धर्मात्मा' बनते देर नहीं लगती, परमात्माकी बात है; परंतु यदि पापी भी भजनका निश्चय कर ले, प्राप्ति होनेमें देरी नहीं लगती; क्योंकि मनुष्य स्वयं तो इस निश्चयके आधारपर उसे साधु ही मानना परमात्माका अंश है। चाहिये। भगवान्ने ऐसा कहा है। यदि भोग और संग्रहकी रुचिको रखते हुए परमात्माकी प्राप्ति करना चाहें तो परमात्माकी प्राप्ति तो बात यह है कि पाप करनेकी भावना रहते हुए ऐसा निश्चय नहीं होता, यह ठीक है, परंतु जीवमात्र दूर रही, उनकी प्राप्तिका एक निश्चय भी नहीं हो भगवानुका अंश है और तत्त्वत: निर्दोष है। संसारकी सकता। कारण कि जहाँ भोगोंकी रुचि है, वहीं आसक्तिके कारण उसमें दोष आये हैं। यदि उसके मनमें परमात्माकी रुचि है। रुचि जबतक भोग-संग्रहमें है, पापोंसे घृणा होकर किसी तरह यह जँच जाय कि मान, बडाई, आराममें है, तबतक कोई भी परमात्मामें भगवान्का भजन ही श्रेष्ठ है, तो वह बहुत शीघ्र नहीं लग सकता; क्योंकि उसका चित्त भोगोंकी रुचिद्वारा धर्मात्मा बन जाता है। हरा गया। जो शक्ति थी, वह भोग और ऐश्वर्यमें लग मनुष्यमें जहाँ संसारकी कामना है, वहीं उसमें गयी। भोग और संग्रहमें मनुष्यको मिलेगा कुछ नहीं, भगवान्की ओर चलनेकी रुचि भी है। यदि भगवान्को प्रत्युत वह परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जायगा।

धोखा हो जायगा धोखा! मान-बड़ाई कितने दिन

रहेगी? मान-बडाई मिलकर भी क्या निहाल करेगी?

प्राप्त करनेकी रुचि जम जाय, तो फिर कामना नष्ट

होकर भगवत्प्राप्तिमें देरी नहीं लग सकती। यह मानवके

संख्या ७] साधकोंवे इद्यत्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्रहरूष्ट्र	• •
भोग कितने दिन भोगेंगे ? संग्रह कितने दिन रहेगा ? यहाँ	ममता नहीं है तथा उनकी प्राप्तिकी इच्छा नहीं है। यदि
खूब धन इकट्ठा किया, पर यदि आज आयु समाप्त हो	उन्हें प्राप्त करनेकी इच्छा हो जायगी तो उनमें हम फँस
गयी तो आज ही मर जाओगे, धन यहीं रह जायगा और	जायँगे।
परमात्माकी प्राप्तिसे वंचित रह जाओगे।	हमारा बन्धन कहाँ है? जितने धनमें हमने
इसलिये भगवान्के कहनेका अभिप्राय यह है	ममता की है, वही तो बाँधनेवाला है। संसारमात्रसे
कि यदि परमात्माकी प्राप्ति वास्तवमें चाहते हो, तो	हमारी मुक्ति स्वत: है। दस-बीस आदिमयोंको, जिन्हें
भोग और संग्रहको महत्त्व मत दो। आजकल तो	हमने अपना मान रखा है, वही बन्धन है। लाख-दो
खर्चके लिये ही रुपयोंका महत्त्व नहीं, अपितु उनकी	लाख रुपयोंको हमने अपना मान रखा है, मकानको
संख्याको महत्त्व दे रहे हैं। हम लखपति हो जायँ,	अपना मान रखा है, वही फँसावट है। हमने जिन्हें
हमारे पास इतना संग्रह हो जाय। पासमें रुपया है पर	अपना नहीं माना है, वे मनुष्य मर जायँ, उन्हें कुछ
उसे खानेमें खर्च नहीं कर सकते, अच्छे काममें खर्च	भी हो जाय, तो हमारे चित्तपर कुछ असर नहीं
नहीं कर सकते। केवल एक धुन धन जोड़नेकी लगी	पड़ता। जिन मकानोंको हमने अपना नहीं माना, वे
हुई है—'संख्या कम न हो जाय।' मूलधनमें कम–	सब-के-सब धराशायी हो जायँ तो हमपर कोई असर
से-कम एक लाख रुपया तो इस साल जमा हो जाय,	नहीं पड़ता। जिन रुपयोंको हमने अपना नहीं माना, वे
ऐसी रुचि रहती है। लड़कोंको उपदेश देते हैं कि	चले जायँ, लाखों-करोड़ोंकी उथल-पुथल हो जाय
'रुपया जोड़ो! जोड़ो नहीं, तो कमाओ, उतना खाओ!	तो हमपर कोई असर नहीं पड़ता; क्योंकि उनमें हम
मूल पूँजी खर्च करते हो? तुममें बुद्धि नहीं है।' मूल	बँधे हुए नहीं हैं। सारे संसारसे आपको बन्धन नहीं
खर्च करते दु:ख होता है तो मूलमें क्या तूली लगाओगे?	है। आपने इन थोड़ोंको जो अपना मान रखा है, यदि
खर्च नहीं करोगे तो क्या करोगे?	इनकी ममताका भी आप त्याग कर दें तो निहाल हो
सज्जनो ! यह संग्रहकी वृत्ति नरकोंमें ले जानेवाली	जायँगे। अधिक बन्धन नहीं है। अधिक-सा बन्धन तो
है। माँ-बाप बूढ़े हो जाते हैं तो वे लड़कोंको समझाते	छूटा हुआ है ही अर्थात् जिनमें आपकी ममता नहीं,
हैं कि 'तुमलोग बुद्धिहीन हो। मूलधन खर्च करते हो?	उनसे आप मुक्त हैं ही। जिनमें आप ममता करते हैं,
इस मूलधनको मत छेड़ो। जितना कमाओ उतना खर्च	उनमें आप बँध जाते हैं।
कर लो, पर मूलधन कम मत करो।' ऐसे पुरुष	मनुष्योंमें ऐसी ही चाल है कि वे अधिक व्यक्तियोंमें,
परमात्माकी प्राप्ति कर ही नहीं सकते। साधु हो, गृहस्थ	पदार्थोंमें ममता करना चाहते हैं। वक्ता भी चाहता है कि
हो, पढ़ा-लिखा हो, मूर्ख हो, पण्डित हो, भाई हो, चाहे	श्रोता अधिक आ जायँ। यदि ऐसी इच्छा नहीं रखेंगे तो
बहन हो, जबतक संग्रह करनेकी तथा संग्रह बना रहे—	फँसेंगे कैसे ? वे भी फँसनेकी तैयारी करते रहते हैं। इसी
यह रुचि रहेगी, तबतक वे परमात्माकी प्राप्तिके मार्गमें	प्रकार अन्य लोग भी अपने-अपने क्षेत्रमें अधिक-से-
नहीं चल सकते। यदि आपके भीतर और संग्रहकी रुचि	अधिक भोग मिल जाय—यह चाहते रहते हैं, पर
नहीं है तो आपके पास चाहे लाखों-करोड़ों रुपये हैं,	अधिक चाहनेसे मिलता नहीं। यदि मिल जाय तो
पर वे आपको अटका नहीं सकते। बैंकोंमें बहुत धन	टिकेगा नहीं और वह यदि टिकेगा भी, तो आप नहीं
पड़ा है, शहरमें बहुत मकान हैं; पर वे हमें नहीं	टिक सकेंगे। इस तरह आप फँसे ही रहेंगे, मरनेके बाद
अटकाते। क्यों नहीं अटकाते? क्योंकि उनमें हमारी	भी आप छूट सकेंगे नहीं।

है। न्याययुक्त कमाते हुए लाख रुपया आ जाय तो मौज, मैं-मैं बुरी बलाय है, सको तो निकसो भाग। लाख चला जाय तो मौज! लाखों-करोडों आ जायँ तो कब तक निबाहे रामजी, रुई लपेटी आग॥ जैसे रुईमें लपेटी आग कितने दिन ठहरेगी? वह वही प्रसन्नता; सब-के-सब चले जायँ तो भी आपको तो जलायेगी ही। ऐसे ही जिन पदार्थोंमें 'मैं और मेरापन' वही प्रसन्नता। तब तो आप वास्तवमें धनपति हैं। पर

भाग ८९

जालसाजी, बेईमानी, ठगी, ब्लेकमार्केट किये बिना पैसे

आजके जमानेमें झूठ, कपट, बेईमानी, अन्याय बिना काम कैसे चल सकता है ? यह दृढ़ धारणा उनके मनमें

बैठ गयी है। इसलिये यदि आपको परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति करनी है तो धन आदि पदार्थोंके भोग और

संग्रहकी आशाका सर्वथा त्याग करना ही पड़ेगा।

करते हो, वे कितने दिन ठहरेंगे? आप सम्बन्ध रखेंगे धन आनेसे तो हो जायँ प्रसन्न और चले जानेसे रोने लग तो बँध ही जायँगे। इसलिये प्रत्येक भाई-बहनके लिये जायँ तो आप धनदास हुए, धनपति नहीं हुए। रुपये बहुत आवश्यक है कि वे संसारके भोगोंको और उनके जानेसे रोना-ही-रोना आ रहा है—हमारा मालिक

संग्रहकी इच्छाको भीतरसे त्याग दें। (धन) चला गया, अब कैसे रहें ? उससे पूछा जाय कि भीतरसे पदार्थींकी इच्छा छोड़ देनेपर पदार्थ क्या चला गया भाई? अरे, जिसने कमाया था, वह तो प्रारब्धानुसार स्वत: आते हैं। चाहनासे पदार्थींके मिलनेमें मौजूद है ? परंतु बात बुद्धिमें नहीं आती; क्योंकि उसने आड़ लगती है। अपनी चाहनाका त्याग होनेसे आपकी धनको अपना इष्टदेव मान रखा है। जिन्होंने धनको आवश्यकता सर्वत्र फैलती है। लोगोंके मनमें आपकी इष्टदेव मान रखा है, उन्हें झूठ, कपट, बेईमानी, आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये स्वतः प्रेरणा होती है। धोखेबाजीका आश्रय लेना पड़ता है। उनके मनमें हमारे चाहना रखते हुए हमारी इच्छा हममें सीमित हो दुढतासे यह भाव जम जाता है कि झूठ, कपट,

पैदा नहीं हो सकते। जैसे भगवान्का भक्त सद्गुणोंका रखते हुए जब हमें धन, मकान मिलता है, तब हम अपनेको सफल मानते हैं; चाहनाका त्याग कर देनेपर सहारा लेता है, ऐसे ही धनके भक्तको झुठ, कपट, छल, वस्तुएँ खुली आयेंगी और हमारी सेवामें लगकर सफल ठगी आदि दुर्गुणोंका सहारा लेना ही पड़ता है। कोई कितनी सच्ची बात कहे, पर उन्हें यही बात जँची हुई होंगी। परमात्म-तत्त्वमें नित्य-निरन्तर स्थिति चाहते हैं है कि झूठ, कपट, चोरी बिना पैसा पैदा नहीं हो सकता। ब्रह्माजीकी भी शक्ति नहीं, जो उन्हें समझा दें। कोई उन्हें ठीक बात समझाये तो उसे वे मूर्ख समझते हैं कि

जाती है और मिलनेमें आड़ लग जाती है। चाहना

तो उत्पत्ति-विनाशवाली वस्तुओंका आकर्षण सर्वथा मिटाइये। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओंमें फँसे रहेंगे, तो अनुत्पन्न तत्त्व नहीं मिलेगा। सदा साथमें रहता हुआ परमात्मा नहीं मिलेगा। उससे वंचित रह

जायँगे। भोग और संग्रहकी रुचि रखेंगे तो परमात्मासे वंचित रहनेके सिवाय अन्य कुछ लाभ नहीं होगा। धन भी नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी तो रहेगा नहीं। न भोग मिलेंगे। यदि मिलेंगे तो वे रहेंगे नहीं और न आप रहेंगे। केवल आपको जन्म-मरणमें डालनेवाला,

भोग और संग्रहकी रुचि रखते हुए तत्त्वकी प्राप्ति, उसकी अनुभूति सम्भव नहीं। आजकल भगवतत्त्वकी नरकोंमें ले जानेवाला बन्धन रहेगा। इसलिये भोग बातें शीघ्र समझमें न आनेका मुख्य कारण यही है कि 'भोग और संग्रहकी रुचि छोडते नहीं और सच्चे हृदयसे

और संग्रहकी इच्छा सर्वथा त्याग दें। आप अपने पास धन रखें, इसमें मेरा विरोध नहीं इस रुचिको छोडना चाहते नहीं। इस रुचिको त्यागे बिना ^{है},HIX ऑडि मो ठाउँहे रह एड हरिंहों हैं ttpst. श्रे के श्रे (gg) ana समात्मात्मत स्रिकेट स्थित स्थित हैं (dinash/Sha

'राम नाम नरकेसरी'—तात्त्विक भावविमर्श संख्या ७] 'राम नाम नरकेसरी'—तात्त्विक भावविमर्श (आचार्य श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय') श्रीरामचरितमानस भगवान् श्रीराघवेन्द्रका पावन 'राम' यह नाम साक्षात् नृसिंहमूर्ति है, जो कलियुगरूपी चरित्र तो है ही, भगवद्भिक्तकी अनेकविध साधनाओंका हिरण्यकशिपुका हनन करके अपना जप करनेवाले प्रतिपादक शास्त्र भी है। भक्तिमार्गमें भगवानुके नाम, प्रह्लादरूपी भगवद्भक्तोंका पालन करेगा।' रूप, लीला, धाम-इन चारोंको भगवत्स्वरूप ही माना श्रीरामनाम-महिमाकी परिणतिमें गोस्वामीजीकी ओरसे जाता है। इनमेंसे चारों या किसी एकका अवलम्बन, शेष यह एक महत्त्वपूर्ण आश्वस्ति है। अब विचारणीय यह तीनोंको स्वयमेव उपलब्ध करा देगा—ऐसा भक्तोंका है कि यहाँ उनका गृढ़ कथ्य क्या है ? दोहेके प्रथम दो अखण्ड विश्वास है और यह श्रृति-शास्त्र-पुराणादि-चरणोंमें दो रूपक हैं-सम्मत भी है। इसीलिये भक्ति-साधनाके साधक शब्दब्रह्म-(१) राम नाम नरकेसरी तथा (२) कनककसिप् रूप भगवन्नामको सर्वसुलभ और श्रेष्ठ उपाय मानते हैं। कलिकाल। श्रीमद्भागवतादि-पुराणोंमें तो नाम-महिमाके अनेक सन्दर्भ तीसरे चरणमें उपमा है—'जापक जन प्रहलाद विस्तृत रूपसे मिलते ही हैं, गोस्वामीजीने भी अपने इस जिमि।' चौथा चरण भक्तोंके लिये आश्वासन है— 'पालिहि दलि सुरसाल'—'दैवीवृत्तियोंका कष्ट दूर 'मानस' ग्रन्थमें यथाप्रसंग इसका विशद प्रतिपादन करके नाम भक्तजनोंकी रक्षा करेगा।' श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त अभिनिवेशके साथ किया है। श्रीरामचरितमानस अनेकत्र रूपकके सुन्दर संविधानक उपलब्ध होते हैं-

बालकाण्डके दोहा क्रमांक अट्ठारहवें के बादकी चौपाईसे सो भी सांगरूपकके। गोस्वामीजी प्राय: किसी भी लेकर सत्ताइसवें दोहेतक पूरा प्रसंग श्रीरामनाम-वन्दनाका

ही है। ग्रन्थकारने यहाँ अनेक युक्तियों तथा औपम्य-विधानोंके द्वारा नाममहिमाका सुन्दर विवेचन किया है। यद्यपि इसमें आरम्भकी—

बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को।। (रा०च०मा १।१९।१) —इस चतुष्पदीसे लेकर अन्ततक तात्त्विकता एवं चमत्कृति हृदयको आवर्जित करती है, किंतु प्रकरणकी

उपसंहृतिका यह सत्ताइसवाँ दोहा तो एक विशेष अर्थगौरवसे मण्डित है। इन पंक्तियोंमें इसीपर एक संक्षिप्त विवेचन करनेका प्रयास किया जाता है। दोहा

इस प्रकार है— राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल।

जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल॥ (रा०च०मा० १।२७)

* एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

इसका सर्वविदित सामान्य अर्थ है कि 'श्रीरघुनन्दनका

उनका पालन तो हो गया। वर्तमान समयमें उनकी जैसी भक्तिनिष्ठा कदाचित् भक्तोंमें न हो सके, फिर भी अपने जपकर्ता—आश्रितजनोंके कलिजन्य दोषोंको निराकृत

करके भगवन्नाम स्वयं उनका पालन करेगा और इसमें देश-काल अथवा संख्याका परिच्छेद नहीं है। जहाँ-जहाँ, जब-जब और जितने भी जपकर्ता नामोपासक होंगे. उनके दैवीभावोंके विरोधी अन्तरायोंको नष्ट करते

जापकजनोंको प्रह्लादसे उपिमत करनेमें भी एक व्यङ्ग्यार्थ है कि जैसे प्रह्लादजीके जीवनमें अत्यन्त कष्ट और

अभिरूप-रूपबिम्बको अधूरा नहीं छोड़ते*, किंतु यहाँ

'जापक जन प्रहलाद' इस रूपकोक्तिका आश्रय न लेकर वे 'जिमि' इस वाचक शब्दको लगाकर उपमाको ले

आते हैं। इसका रहस्य यही है कि 'प्रह्लाद तो एक थे—

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग। बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

(रा०च०मा० १।२५४)

हुए श्रीभगवन्नाम उनका पोषण करता रहेगा।'

परीक्षाएँ आयीं, फिर भी वे 'प्र' अर्थात् प्रकृष्ट 'ह्लाद'

भाग ८९ अर्थात् आनन्दसे युक्त ही रहे, वैसे ही नामका आश्रय दुसरा उपमान और क्या हो सकता है? यह द्वन्द्व है लेनेवालेपर कितनी भी विपत्तियाँ आयें—उसकी कितनी और यह द्वन्द्वात्मकता ही इसका सबसे बडा बल भी भी परीक्षाएँ हों, वह नामकी कृपासे परमानन्दमें ही है। हिरण्यकशिपुको वरदान था कि 'वह न दिन में निमग्न रहेगा। मरेगा न रात में, न बाहर मरेगा न भीतर, न शस्त्रसे राम-नामको नृसिंह तथा कलियुगको हिरण्यकशिपु मरेगा न अस्त्रसे, न मनुष्यसे मरेगा न पशुसे ""। कहनेमें भी विलक्षणता है। हिरण्यकशिपु या कनककशिपु भगवान्ने इसी द्वन्द्वात्मकताकी सन्धिको पकडा। वे एक द्वन्द्व है। 'हिरण्य' या 'कनक' का अर्थ है—सुवर्ण नृसिंह बन गये-- पूरे मनुष्य न ही पूरे पशु और अर्थात् भौतिक चाकचक्य और 'कशिप्' का अर्थ है-देहलीमें ले जाकर अपनी गोदमें रखकर, सन्ध्याके शय्या अर्थात् कामोपभोग तथा निद्रा-आलस्य प्रमादादि समय तीव्र नखोंद्वारा उस दैत्यका वध कर डाला। भावोंकी वृत्ति। संसारमें कनक और कामिनी—ये दो ही द्वन्द्वात्मक भौतिकताको अपनी 'न मृगं न मानुषम्' तो महाव्यामोहके स्वरूप हैं— (श्रीमद्भा० ७।८।१८)-की अनिर्वचनीयतासे नि:शेष कर डाला। इस लीलासे प्रह्लाद (प्रकृष्ट आह्लाद) वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे कान्तासु कनकेषु च। अर्थातु 'ब्रह्मानन्द' का सर्वात्मना सम्पोषण संघटित हो तासु तेष्वप्यनासक्तः साक्षाद् भर्गो नराकृतिः॥ अर्थात् ब्रह्माजीने इस संसारमें भ्रमके दो प्रकार रच सका। गोस्वामीजीने 'राम' इस दो वर्णोंके^१ सम्मिलित शब्द-विग्रहको 'नर-हरि'-रूपमें उपकल्पित किया है। दिये हैं एक 'स्त्री', दूसरा सुवर्ण (धन-सम्पत्ति)। इन दोनोंमें आसक्त न होनेवाला मनुष्य मनुष्य नहीं, साक्षात् राम-मन्त्रका प्रथमाक्षर रेफ (र्) ही इसकी शक्ति है। यह अन्तःस्थ वर्ण है। तन्त्रशास्त्रोंके अनुसार यह परमेश्वर है। 'कनक' समस्त ऐश्वर्योंका प्रतीक अथ च लोभका अग्निबीज^२ तथा पंचप्राणमय है^३ अतएव यहाँ हम उपलक्षण है तथा 'कशिपु' अर्थात् 'शय्या' भोग-वृत्ति नरताके प्रतीकरूपमें ग्रहण कर सकते हैं। 'नर' शब्द या कामकी प्रतीक है, इस प्रकार हिरण्यकशिप तत्त्वत: गतिशीलता^४ एवं विचार-प्रवणताको उपलक्षित करता संग्रह और भोग अथवा लोभ और कामका सिम्मिश्रित है। लोभका दमन मनुष्यके मननशीलतारूप विवेकसे रूप है—द्वन्द्व है। शास्त्रोंमें कलियुगका जो चित्र ही सम्भव है, किंतु काम बिना पराक्रम या वीरताके वर्णित है, उसमें उसका अधिदेवता दीन-हीन तथा द्र नहीं होता। इस मनोभावको दबाने या हटानेके नग्नपुरुषकी-सी आकृतिवाला है। उसका एक हाथ लिये किसी भयप्रद वस्तुका उपस्थित हो जाना अत्यन्त जिह्वाका स्पर्श कर रहा है और दूसरा उपस्थपर सहायक होता है। अत्यन्त कामान्धके भी समीप यदि केन्द्रित है। 'जिह्ना' अर्थात् लौल्य (लोभ) एवं 'उपस्थ' सहसा कोई सिंह, व्याघ्र या सर्प आ जाय तो उसका वह आवेश क्षण-भरमें दूर हो जाता है और वह अर्थात् काम-यही तो कलिका वास्तविक स्वरूप है। भयसे काँपने लगता है; क्योंकि कामवासनाकी चरितार्थता इस दृष्टिसे कलियुगके लिये हिरण्यकशिपुसे बढ़कर

इस दृष्टिसे किलियुगर्क लिये हिरण्यकशिपुसे बढ़कर भयसे कॉपर्न लगता है; क्योंकि कामवासनाकी चरितार्थता

१. यद्यपि 'राम' शब्द में र्+आ+म्+अ इस प्रकार व्याकरणकी दृष्टिसे चार वर्ण हैं। अ–कारको द्विरावृत्त मानकर उसको एक वर्ण ही माना
जाय तो यहाँ तीन मूल वर्ण र्, अ्, म् सिद्ध हुए, जिनको गोस्वामीजीने 'हेतु कृसानु भानु हिमकर को॥' (रा०च०मा० १।१९।१) कहकर
रेखांकित किया है, किंतु व्यावहारिक दृष्टिसे ऐसे स्थलोंमें स्वर और व्यंजनके संयुक्ताक्षरको एक वर्ण मानकर ही गिना जाता है, तभी
'हरिरित्यक्षरद्वयम्' (पद्मपु० उत्तरखण्ड ७१।१२) आदि वचनोंकी संगति लग सकती है। स्वयं गोस्वामीजी भी इसी दृष्टिसे 'राम' इस भगवन्नाममें

दो वर्ण या अक्षर ही स्वीकार करते हैं, यथा—'राम नाम बर बरन जुग' (रा०च०मा० १।१९), 'आखर मधुर मनोहर दोऊ।' (रा०च०मा०

१।२०।१) 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ॥' (रा०च०मा० १।२०) २. अनन्तोऽग्न्यासन: (शारदातिलक-तन्त्र)

३. रेफञ्च चञ्चलापाङ्गि कुण्डलीद्वयसंयुतम्। पञ्चप्राणमयं वर्णम्....। (कामधेनु-तन्त्र, षष्ठ पटल) ४. 'नृ नये' (भ्वा० क्रया० प० से) अच् प्रत्यय 'नरति, नृणाति वा नरः' (अमरकोष २।६।१ पर 'रामाश्रमी' टीका)

बागकी रक्षाका अधिकार है, फल खानेका नहीं संख्या ७] भीतिमें नहीं हो सकती। कामके शत्रु भगवान् शिवके किया है— गलेमें सर्प और मुण्डमाल आदि होनेका यही रहस्य तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप-पहार। है। राम-मन्त्रका म-कार अपनी तात्त्विक स्वरूप-फिर आवन पावत नहीं, देत मकार किँवार॥ विलक्षणताके कारण भय-जनकता तथा पराक्रमका रामनामका आश्रय लेनेवालोंपर प्रह्लादकी भाँति भी द्योतक है। कोशकारोंने अनेक अर्थोंके साथ परीक्षाकी घडियाँ तो आ सकती हैं, किंतू जो अपनी इसका एक अर्थ 'यम' भी माना है। शारदातिलकमें निष्ठा नहीं छोडेंगे, वे उस परीक्षामें सफल होंगे— म-कारको चतुर्भुज, मुण्डमालाधारी तथा विषयुक्त सर्पके इसमें सन्देह नहीं है। प्रभुका नाम स्वयं उनका पालन सद्श भयानक कहा गया है। वर्णाभिधान-तन्त्रने इसे करेगा। इसके सहारे वे लोभ और कामके द्वन्द्व 'महाकाल' तथा 'महान्तक' की संज्ञा दी है। कामधेनु-कलिकालको तिरस्कृत करके परमानन्दमें निमग्न तन्त्रके अनुसार यह अत्यन्त ऊर्जस्वल तथा अरुणादित्य-रह सकेंगे; क्योंकि इस युगका परम-साधन हरिनाम संकाश है, कदाचित् इसीलिये मानसकारने इसे सिंहसे ही तो है-उपमित किया है। हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्। आशय यह है कि 'राम'-शब्दका रेफ विचार कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥ तथा म-कार दूढ़ताका प्रतीक है; क्योंकि ऐश्वर्यकी (नारदपुराण पू० ख० ४१।११५) सार-हीनताका विचार करके लोभसे बचा जा सकता पहलेकी पंक्तियोंमें श्रीगोस्वामीजी महाराज भी है और दुढ़ता या मनोरोधके द्वारा कामको भी यही बात कह आये हैं-वशमें किया जा सकता है। इस दृष्टिसे रेफ पापोंका राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक लोक पितु माता॥ परिमार्जन है तो म-कार है उनका आत्यन्तिक वर्जन। निहं किल करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥ इसी तथ्यको गोस्वामीजीने अन्यत्र भी प्रतिपादित (रा०च०मा० १।२७।६-७) बागकी रक्षाका अधिकार है, फल खानेका नहीं साधु इब्राहीम आदम घूमते-घामते किसी धनवान्के बगीचेमें जा पहुँचे। उस धनी व्यक्तिने उन्हें कोई साधारण मजदूर समझकर कहा—'तुझे यदि कुछ काम चाहिये तो बगीचेके मालीका काम कर। मुझे एक मालीकी आवश्यकता है।' इब्राहीमको एकान्त बगीचा भजनके उपयुक्त जान पड़ा। उन्होंने उस व्यक्तिकी बात स्वीकार कर ली। बगीचेका काम करते हुए उन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन बगीचेका स्वामी कुछ मित्रोंके साथ अपने बगीचेमें आया। उसने इब्राहीमको कुछ आम लानेकी आज्ञा दी। इब्राहीम कुछ पके आम तोड़कर ले आये; किंतु वे सभी खट्टे निकले। बगीचेके स्वामीने असन्तुष्ट होकर कहा—'तुझे इतने दिन यहाँ रहते हो गये और यह भी पता नहीं कि किस वृक्षके फल खट्टे हैं तथा किसके मीठे?' साधु इब्राहीमने तनिक हँसकर कहा—'आपने मुझे बगीचेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। फल खानेका अधिकार तो दिया नहीं है। आपकी आज्ञाके बिना मैं आपके बगीचेका फल कैसे खा सकता था और खाये बिना खट्टे-मीठेका पता कैसे लगता।' वह व्यक्ति तो आश्चर्यसे साधुका मुख देखता रह गया।

'मन क्रम बचन करेहु सेवकाई' (श्रीबालकृष्णजी कुमावत) महत्येषा हि ते बुद्धिरेष चाभ्युदयो महान्।

श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीलक्ष्मणजीके चरित्रको समर्पित सेवकके चरित्रके स्वर्गस्य मार्गश्च यदेनमनुगच्छसि॥ रूपमें दर्शाया है। जहाँ भरत प्रेमकी साक्षात् प्रतिमूर्ति हैं,

वहाँ लक्ष्मण सच्चे सेवककी भूमिकामें खरे उतरते हैं। जब भगवान् श्रीराम वनको प्रस्थित होने लगे तो लक्ष्मण सिद्ध हुए, जो तुम प्रियवादी देवसदृश भ्राताकी सेवा

अधीर हो उठे और उन्होंने प्रभुकी सेवामें रहनेके लिये दृढ़ संकल्प कर लिया। वे माता सुमित्रासे प्रभु श्रीरामके



नहीं हो और स्वामीको तनिक भी क्लेश नहीं हो आदि साथ वन जानेके लिये आज्ञा लेने जाते हैं। माताजी सहर्ष बातें सेवकको सदैव अपनानी चाहिये। गोस्वामीजी निम्न स्वीकृति ही नहीं देती हैं, अपितु इसे समस्त पुण्योंका पंक्तियोंमें माता सुमित्राके माध्यमसे सेवाके आवश्यक

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥

(रा०च०मा० २।७५।३-४) वे कहती हैं - जबतक श्रीरामजी अयोध्यामें रहे,

तबतक सबका भाग्य रहा, सबको दर्शन होते रहे, सबको

सेवा मिलती रही। वनमें तुम्हारा ही भाग्य है, सब सेवा

तुम्हींको प्राप्त हुई। ऐसा ही श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणके

फल भी निरूपित करती हैं-

तत्त्वोंका वर्णन करते हैं-

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जिन सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥ सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

है। गीतामें भी कहा है—

तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥

जेहिं न रामु बन लहिंह कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

(रा०च०मा० २।७५।५-८) इन पंक्तियोंमें सेवकका धर्म निरूपित किया गया

है। सेवकको पाँच बातोंके वश स्वप्नमें भी नहीं होना चाहिये-राग, रोष, ईर्ष्या, मद (घमण्ड) तथा मोह।

(वा० रा० २।४०।२५-२६)

अर्थात् अहो लक्ष्मण! तुम धन्य हो, तुम्हारे मनोरथ

श्रीसीतारामचरणानुराग होना ही सबसे बड़ा फल

वनमें प्रभुके साथ जानेकी अनुमति माता सुमित्रासे

करोगे। तुम्हारी बुद्धि प्रशंसनीय है। तुम्हारे भाग्यका बड़ा

भारी अभ्युदय हुआ, जो तुम साथ जा रहे हो। यह

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।'

प्राप्त हो जानेपर लक्ष्मणजीके हर्षकी सीमा नहीं रही। जाते समय माता सुमित्राने उन्हें जो उपदेश किया, वह उपदेश मानवमात्रके लिये दिया गया है। सेवा करते समय हमें किन-किन विकारोंसे बचना है, सेवा मन, वचन और कर्मसे होनी चाहिये, सेवकमें प्रमादका उदय

तुम्हारे स्वर्गका अर्थात् सर्वाधिक सुखका मार्ग है।

चालीसवें सर्गमें पुरवासियोंने कहा है-अहो लक्ष्मण सिद्धार्थः सततं प्रियवादिनम्। सब प्रकारसे विकारोंको त्यागकर मन-कर्म-वचनसे Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharma | HINDE WITH LOVE BY

संख्या ७] फ्रिक्क फ्रिक्क फ्रिक्	करेहु सेवकाई' **************
—————————————————————————————————————	—————————————————————————————————————
समर्पित होकर सेवा करोगे तो तुम्हें वनमें सब तरहसे	ं मरम बचन जब सीता बोला ' और 'जनकसृता
सुख होगा। तुम्हारे संग पिता-माता श्रीराम-सीताजी	परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥'
ुँ हैं। अर्थात् माता-पिता पुत्रको हर तरहका आराम देते	पर लक्ष्मणजी कुछ रुष्ट होकर न बोले—क्रोध आनेसे
हैं, तुम्हें अपने आरामकी चिन्ता वहाँ नहीं करनी	सेवा भंग हो जायगी, इस बातका बराबर ध्यान रखा।
पड़ेगी। हे पुत्र! तुम वही करना, जिससे श्रीरामजी	ईर्ष्यांके वश न होनेका भाव यह है कि किसी समय
वनमें क्लेश न पायें।	किसी भी कारणसे यह चित्तमें न आये कि श्रीरामजी भी
राग (सांसारिक प्रेम), क्रोध, ईर्घ्या (डाह), मद	राजकुमार हैं और मैं भी राजकुमार हूँ, दोनों बराबर हैं,
और मोह—ये सब सेवा (रामभक्ति)-के बाधक हैं।	सेवा क्यों करें ? मदके वश न होनेका भाव यह है कि
इनसे सदैव बचते रहना चाहिये। अन्यत्र इसकी पुष्टि	कभी भी जाति, विद्या, बल इत्यादिका गर्व न हो, यह
करते हुए मानसमें कहा गया है—	बात कदापि मनमें न आये कि मेरे अतिरिक्त कौन इनका
तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ।	रक्षक या सेवक है। मोहके वश न होनेका भाव यह है
मुनि बिग्यान धाम मन करिह निमिष महुँ छोभ॥	कि घरका कभी भी मोह नहीं रहे।
(रा०च०मा० ३।३८क)	उपर्युक्त पाँच विकारोंके अलावा अन्य विकारोंका
श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें भी इसी	त्याग करनेके लिये भी माता सुमित्राने पुत्र लक्ष्मणको
बातको रेखांकित किया गया है कि जो व्यक्ति इन	आदेश दिया। अर्थात् सब प्रकारके विकारोंको छोड़कर
नरकके द्वारोंसे बच जाता है, वही परम गतिको प्राप्त कर	मन, कर्म तथा वचनसे सेवा हो—इस बातका पूरा-पूरा
सकता है—	ध्यान रखना सेवकका सच्चा धर्म होता है। मनकी सेवा
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।	यह है कि सेवाके समयका ध्यान बना रहे। वचनकी
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥	सेवाका आशय यह है कि मनकी बात रखकर अनुकूल
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।	आज्ञा माँगना और उसे पूरा करना। सदैव प्रिय, मधुर,
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥	कोमल प्रेममय वचन बोलना। कर्मसे सेवाका तात्पर्य
(गीता १६।२१-२२)	प्रत्यक्ष सेवा करना है। माता सुमित्राजीने लक्ष्मणजीको
अर्थात् काम, क्रोध तथा लोभ—ये तीन प्रकारके	यह भी निर्देश दिया कि वनमें श्रीरामसीताजीको कोई भी
नरकके द्वार आत्माका नाश करनेवाले हैं। अतएव इन्हें	क्लेश नहीं हो, वही उपाय तुम्हें करना है। वनमें बहुत
त्याग देना चाहिये। जो पुरुष इनसे मुक्त हो अपने	क्लेश हैं। कहा भी गया है—' <i>ब्रिपिन ब्रिपति नहिं</i>
कल्याणका आचरण करता है, वह परमगतिको जाता है	<i>जाइ बखानी।</i> पर्णशाला, भोजनशाला, पुष्पशय्या,
अर्थात् परमेश्वरको प्राप्त कर लेता है।	वनके जीवोंकी रक्षा इत्यादिसे सम्बन्धित समुचित सेवाका
रागके वश न होनेका भाव यह है कि श्रीसीता-	उपदेश इसमें निहित है।
रामजीको छोड़ अन्य किसीमें प्रेम नहीं करना है। रोषके	माता सुमित्राजीको कितना ख्याल है कि श्रीरामजीको
वश न होनेका भाव यह है कि श्रीरामसीताजी जो आज्ञा	दु:ख न हो। यह बात गीतावलीसे भलीभाँति स्पष्ट हो
दें—वह यदि तुम्हारे मनके अनुकूल न भी हो तो भी	जाती है। अपने पुत्र लक्ष्मणको शक्ति लगनेका शोक
कदापि रुष्ट न होना। लक्ष्मणजीने इसे प्रमाणित भी	उनको नहीं है वरन् राम अकेले हैं, इसका शोक है। वे

भाग ८९ कल्याण शत्रुघ्नजीसे कहती हैं कि तुम जाओ, सेवा करो। अन्य किसी ग्रन्थमें तो क्या अन्य किसी देश या भाषामें गीतावलीमें गोस्वामीजीने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है— मिलना असम्भव है। अथसे इतितक सुमित्राजीके हृदयको पुत्र-विरहका स्पर्श भी नहीं हुआ। उन्होंने अपने सुनि रन घायल लषन परे हैं। रामभक्त पुत्रको चौदह वर्षके वनवासके लिये जाते समय स्वामिकाज संग्राम सुभटसों लोहे ललकारि लरे हैं॥ सुवन-सोक, संतोष सुमित्रहि, रघुपति-भगति बरे हैं। भी हृदयसे नहीं लगाया। धन्य है भक्तजननी और उसका—'वजादिप कठोराणि मृद्नि कुसुमादिप' छिन-छिन गात सुखात, छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥ हृदय। उन्होंने अपने द्वारा कही हुई इस पंक्तिको पूर्णत: किपसों कहित सुभाय, अंबके अंबक अंबु भरे हैं। सार्थक किया-रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर, जद्यपि धनु दुसरे हैं॥ 'तात! जाहु कपि सँग', रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं। पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥ प्रमुदित पुलिक पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं।। नतरु बाँझ भिल बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी।। अंब-अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं। (रा०च०मा० २।७५।१-२) ऐसी माताका पुत्र लक्ष्मणजीके समान सर्वलक्षण-तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥ सम्पन्न न होगा तो किसका होगा? पद्मपुराणके (गीतावली-लंकाकाण्ड पद १३) अर्थात् जब सुमित्राजीने सुना कि लक्ष्मणजी युद्ध-पातालखण्डमें माता सुमित्राके सम्बन्धमें कहा गया है स्थलमें घायल पड़े हैं और उन्होंने अपने स्वामीके लिये कि पतिको प्रिय सुमित्राअम्बाजी धन्य हैं, जिन्होंने वीर विपक्षी योद्धा मेघनादसे रणभूमिमें खूब ललकारकर लक्ष्मणको उत्पन्न किया, जो अहर्निश रामचरण-सेवामें लोहा लिया है, तो उन्हें पुत्रकी दशासे क्षणिक शोक तो रत रहे। हुआ पर इस बातसे संतोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजीकी धन्या सुमित्रा सुतरां वीरसूस्वपतिप्रिया। भक्तिको स्वीकार किया। उनके अंग एक क्षणमें सुख यस्यास्तनूजो रामस्य चरणा सेवतेऽन्वहम्॥ जाते हैं और फिर दूसरे ही क्षणमें आनन्दसे हरे हो जाते (पद्मपुराण पातालखण्ड १।४१) हैं। तब माता सुमित्राने नेत्रोंमें जल भरकर स्वभावसे ही लक्ष्मणजीने अपनी माताके उपदेशका चौदह वर्षतक हनुमान्जीसे कहा—'रामजी कुअवसरमें भाईसे बिछुड़ अक्षरशः पालन किया। उन्होंने सोचा कि जाग्रत् गये, यद्यपि धनुष उनके हाथमें है, फिर वे शत्रुघ्न की अवस्थामें तो माताकी आज्ञाका उल्लंघन कदापि नहीं ओर संकेत करते हुए बोलीं-शत्रुघन! तुम हनुमान्के हो सकता, परंतु सो जानेपर नींदमें स्वप्न आनेपर उक्त साथ जाओ।' यह सुनकर शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर ऐसे विकारोंमेंसे कोई भी विकार आ सकता है, इसलिये उन्होंने यह संकल्प किया कि वे चौदह वर्षपर्यन्त पुलिकत हो उठे, मानो सभी देव उनके अनुकूल हो गये हों। माता और छोटे भाईकी यह दशा देखकर हनुमानुजी सोयेंगे ही नहीं। जब नींद नहीं आयेगी तो स्वप्न आनेका प्रश्न ही नहीं उठता और वे चौदह वर्षतक और भरतजी बडे ही ग्लानिग्रस्त हो गये। तुलसीदासजी कहते हैं-तब माताने उन सबको समझाकर सचेत नहीं सोये। यदि राष्ट्रका प्रत्येक नागरिक राग, रोष, ईर्ष्या, मद, किया। स्वामी प्रज्ञानन्दजीने एक स्थानपर लिखा है कि मोह—इन विकारोंको त्यागकर राष्ट्रकी सेवामें लग जाय 'श्रीरामचरितमानसकी सुमित्राके समान माताका चरित्र तो रामराज्यकी स्थापना आज भी हो सकती है।

संख्या ७] 'सत संगा	ते दुर्लभ संसारा' २९
******************************	***********************************
'सत संगति	दुर्लभ संसारा'
(वैद्य श्रीभग	वतीप्रसादजी शर्मा)
देवर्षि नारदजी अपने भक्तिसूत्रमें सत्संगतिकी महिम	🛮 एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥
बताते हुए कहते हैं—	(रा०च०मा० १।४८।१)
'महत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योऽमोघश्च।' (सूत्र ३९) तुलसी बाबा कहते हैं—
महत्पुरुषोंका संग दुर्लभ, अगम्य और अमोघ है	। सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥
'लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव' उस भगवान्की कृपासे ह	ी (रा०च०मा० ७।१२३।६)
महत्पुरुषोंका संग मिलता है।	बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
'तिस्मंस्तज्जने भेदाभावात्।' (सूत्र ४१)	मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
क्योंकि भगवान् और उनके भक्तों में भेद नहीं है	। (रा०च०मा० ७।६१)
'तदेव साध्यतां तदेव साध्यताम्।' (सूत्र ४२) क्षणमात्रका सत्संग भी संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है।
अतएव उस सत्संगकी ही साधना करो, उसीकी ह	ी इस विषयमें एक बड़ा रोचक आख्यान है, जो सत्संगकी
साधना करो।	महत्ता प्रदर्शित करता है। विश्वामित्रजी और वसिष्ठजी
प्रश्न यह उपस्थित होता है कि महापुरुष किर	·
कहें ? जिनके पास अकूत सम्पत्ति है या जो लच्छेदा	
भाषण देते हैं या जिनके हजारों अन्धश्रद्धालु शिष्यमण्डत	
हैं अथवा जिनके सैकड़ों सर्वसुविधायुक्त आश्रम हैं–	-
उन्हें संत कहें?	विसष्ठजी महाराज कह रहे थे कि ठीक है, तपस्या
इस विषयमें भगवतरिसकजी महाराज संतोंके लक्षा	<u> </u>
बताते हुए कहते हैं—	अब विवादका हल कौन करे, तो दोनों महात्मा
इतने गुन जामें सो संत।	ब्रह्माजीके पास गये, प्रार्थना की—महाराज! आप कृपाकर
श्रीभागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमलाकंत	-
हरिकौ भजन साधुकी सेवा, सर्वभूत पर दाया	
हिंसा, लोभ, दंभ, छल त्यागै, बिषसम देखै माया	
सहनसील, आसय उदार अति, धीरजसहित बिबेकी	
सत्य बचन सबसों सुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी	•
इंद्रीजित, अभिमान न जाके, करै जगतकों पावन	
भगवतरसिक तासुकी संगति तीनहुँ ताप नसावन	_
तो भैया! भगवतरसिकजी महाराजकी कसौटीप	
कसकर अच्छी तरह पूछ–परखकर उपर्युक्त गुणोंसे युत्	
संतका सत्संग करनेपर ही कल्याणका मार्ग प्रशस	
होगा।	रामनामका जप करता रहता हूँ, मुझे इतना अवकाश
'गुरू कीजै जान पानी पीवै छान।'	ही कहाँ कि आपकी शंकाका समाधान कर सकूँ, मेरी
सत्संगके लिये भोलेबाबा भी त्रेतायुगमें कुम्भ	·
ऋषिके पास जाते हैं—	पाताल पधारें, वे अवश्य आपकी शंकाका समुचित

समाधान कर सकेंगे। सत्संग प्राप्त होता है-दोनों महात्मा शेषजीके पास पातालमें पहुँचे और पुन्य पुंज बिनु मिलिहं न संता। सतसंगित संसृति कर अंता॥ उनके समक्ष भी अपना प्रश्न दोहराया। शेषजी बोले-(रा०च०मा० ७।४५।६) भैया! मेरे सिरपर पृथ्वीमाताका भार है। इसे कोई तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा।। थोड़ा हलका कर दे तो मैं आपके प्रश्नका उत्तर (रा०च०मा० ७।६१।४) सरलतासे दे सकूँगा। विश्वामित्रजी आप थोड़ा प्रयत्न एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध। करें, विश्वामित्रजीने अपनी साठ वर्षकी तपस्याका तुलसी संगति साधकी हरे कोटि अपराध॥ फल पृथ्वीमाताको अर्पण किया और प्रार्थना की कि मन मैले तन ऊजरे बगलन कैसे भेक। हे पृथ्वीमाता! मैं अपनी साठ वर्षकी तपस्याका फल इनते तो कागा भले जो तर ऊपर एक॥ आपको अर्पण करता हूँ, आप थोड़ा शेषजीको अवकाश तो सज्जनो! खुब सोच-विचारकर भगवतरसिकजी दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान महाराजकी कसौटीपर खूब कसकर उच्चकोटिके महत्पुरुषोंका संग अवश्य करें। आज भी महत्पुरुषोंका

कर सकें, फिर भी पृथ्वीमाता एक इंचमात्र भी ऊपर न उठ सर्कों। तब शेषजीने वसिष्ठजीसे कहा—आप कुछ प्रयत्न करें, वसिष्ठजीने प्रार्थना की-हे पृथ्वीमाता! मैं एक घड़ीका सत्संग आपको अर्पण करता हूँ, आप शेषजीके सिरको अपने भारसे किंचित् अवकाश दे दें ताकि शेषजी महाराज हमारी शंकाका समाधान कर सकें और तत्काल पृथ्वीमाता शेषजीके सिरसे किंचित् ऊपर उठ गयीं। तब विश्वामित्रजी बोले-शेषजी महाराज! अब आप हमारी शंकाका समाधान करनेकी

कृपा करें। शेषजीने कहा—अब भी शंकाका समाधान

करनेकी आवश्यकता रह गयी क्या? जो काम आपकी

साठ वर्षकी तपस्या न कर सकी, वह एक घडीके

सत्संगने करके दिखाया है, अतः मेरे विचारमें तपस्यासे

सत्संग बहुत ही श्रेष्ठ है। तुलसी बाबा कहते हैं,

अनेक जन्मोंके प्रभूत पुण्य हों, तभी महत्पुरुषोंका

(श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')

कसौटी दी गयी है, वहाँ वर्णन है कि गरुड़जीने जब काकभुशुण्डिजीके आश्रममें प्रवेश किया, तभी उनका मोह, संशय और भ्रम सब नष्ट हो गया। वे काकभुशुण्डिजीसे कहते हैं-देखि परम पावन तव आश्रम । गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

(रा०च०मा० ७।६४।२)

भाग ८९

मायाके गुण-दोष वहाँ प्रवेश नहीं करते थे। वस्तुत: सच्चे संतोंका यह प्रभाव रहता है कि उनके सात्त्विक स्वभावके कारण वहाँके जड-चेतन समस्त पदार्थ सात्त्विक हो जाते हैं, जबिक असंतके पास जानेपर मन और अधिक भौतिक चाकचिक्यमें फँस जाता है।

काकभुशुण्डिजीके आश्रमकी विशेषता थी कि

अभाव नहीं है, आवश्यकता है तो हमारे अन्त:करणमें

सत्संगके प्रति भावकी। श्रीरामचरितमानसमें संतकी

गौकी स्तुति

गौएँ जो-जो दु:ख सहन करें, उनसे बढ़कर मैं दु:ख सहूँ॥ गौओं से यह ब्रह्माण्ड व्याप्त, शुभ कामधेनु है दिव्य नाम। |★| उस भृत और भावी माँ को, मेरा प्रणाम शत-शत प्रणाम ॥ |★| Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

गौएँ मेरी मैं गौओं का, वे जहाँ रहें मैं वहीं रहूँ।

नसीबकी चाभी कर्मके हाथ संख्या ७] नसीबकी चाभी कर्मके हाथ (डॉ० गो० दा० फेगडे) संसारमें दो प्रकारके लोग पाये जाते हैं-कोई फल मिलता है। संत कबीरने सही कहा है-भाग्यको दोष देकर रोता-कुढ्ता है तो कोई भाग्यको करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय। चुनौती देकर हँसते-गाते सफलताकी मंजिलकी ओर बोवै पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय॥ चलता रहता है और एक दिन वह उसे पा भी लेता है। कर्म करते समय तो विचार किया नहीं, अब भारतवर्षमें आमतौरपर ऐसी धारणा है कि मनुष्यको जो पछतानेसे क्या लाभ ? बबूलका पेड़ बोकर आमके फल कैसे खानेको मिलेंगे? उसी तरह अधर्मका आचरण भी यश-अपयश, अमीरी-गरीबी या सुख-दु:ख मिलता है—वह उसके भाग्यसे मिलता है, वह पूर्वजन्मके करनेवालेको धर्मका फल कैसे मिलेगा? कर्मका फल है। भाग्यवादी लोग समझते हैं कि भाग्यको सच तो यह है कि नसीब और कर्म—ये दोनों एक बदला नहीं जा सकता, वे उसे बदलनेकी कोशिश भी ही सिक्केके दो पहलू हैं। वक्त कहो, कर्म कहो, नसीब नहीं करते, कर्मवादी लोगोंको यह धारणा मंजूर नहीं, वे कहो या कोई भी नाम दो, कर्मके सहस्र नाम हैं, सब परिस्थितिके आगे झुकते नहीं, अपितु उसपर विजय कुछ करनेवाला एक मन ही है। जो सत्कर्म करता है, पानेकी कोशिश करते हैं। यह सच है कि जीवनमें कुछ उसका नसीब खुलता है। यह कहना गलत है कि बातें भाग्यसे मिलती हैं फिर भी जिन्दगीभर भाग्यका भारतमें संत-महात्माओंने धर्मकी अफीम देकर लोगोंको गुलाम बने रहना पलायनवादकी निशानी है, जिन्दगी तो निकम्मा बनाया है। अज्ञानी लोग ही ऐसा कहते हैं, आजतक सब सन्तोंने प्रयत्नवादकी ही सीख दी है। ताशके खेलकी तरह होती है। ताशके खेलमें आपको कौन-से पत्ते मिलेंगे—यह नसीबकी बात होती है, महाराष्ट्रके संत समर्थ गुरु रामदासने कहा है—'यल तो देव जाणावा' अर्थात् प्रयत्नको भगवान् समझो, संत लेकिन मिले हुए पत्ते किस तरह खेले जायँ-यह आपके ही हाथमें होता है। पत्तोंकी चाल चलना आपकी तुकारामने कहा है—'**आधी कष्ट मगफल, कष्टचि** नाही ते निर्फल।' 'केल्याने होत आहे रे आधी होशियारी, कुशलता और पुरुषार्थकी बात होती है। कर्णने महाभारतमें कहा है—'दैवायत्तं कुले जन्मः केलेचि पाहिजे।'-इन वचनोंका भावार्थ है, पहले मदायत्तं तु पौरुषम्।' अर्थात् कौनसे कुलमें जन्म लेना श्रम करो, फिर फल मिलेगा, श्रम ही नहीं किया तो फल यह भाग्यके हाथमें है, लेकिन पराक्रम करना मेरे हाथमें कैसे मिलेगा? इसलिये पहले कोशिश करनी चाहिये। है। समाजमें भी हम देखते हैं कि कुछ लोग ऊँचे 'ईश्वर उन्हींकी मदद करता है, जो स्वयंकी मदद खानदानमें पैदा होते हैं, लेकिन कर्मसे हीन होते हैं। करते हैं 'ईसा मसीहका यह वचन दुनियाभरमें मशहूर इसके विपरीत कुछ लोग निम्न कुलमें पैदा होकर भी है। गौतम बुद्धने 'स्वयंदीप' बननेका सन्देश दिया है। महान् कार्य करते हैं। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उनके भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने स्पष्ट रूपसे कहा है-पास फूटी कौड़ी भी नहीं होती, खानेके मुहताज होते **'पुरुषप्रयत्नीं दैवाचें साहय'** (आचार १०२) अर्थात् हैं, लेकिन वे लगन और मेहनतसे धनवान् बन जाते हैं, नसीब कोशिश करनेवालेकी ही सहायता करता है, सिर्फ कुछ चाँदीका चम्मच मुँहमें डालकर पैदा होते हैं, लेकिन भगवान्के भरोसेपर कामयाबी कैसे मिलेगी? अपनी नादानीसे दर-दरके भिखारी बन जाते हैं। भगवान्ने आलस्य मनुष्यका महान् शत्रु है, इसके कारण अनेक अनर्थ होते हैं। जैसे-तो उन्हें चमन (फुलवारी) दिया होता है, लेकिन वे उसको अपनी कर्मदरिद्रताके कारण सहरा (रेगिस्तान) अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्। बना देते हैं। जैसा जिसका कर्म होता है, वैसा उसको अधनस्य कुतो मित्रममित्रस्य कुतः सुखम्॥

भाग ८९ अर्थात् आलसी मनुष्यको विद्या कैसे प्राप्त होगी? ऐसा कहा जाता है कि प्रतिभा ९० प्रतिशत मेहनत विद्याविहीनको धन कैसे प्राप्त होगा? निर्धनको कौन और १० प्रतिशत हुनर होती है (Intelligence is 90% मित्र बनायेगा? और जिसको मित्र ही नहीं, वह कैसे Perspiration and 10% Inspiration)। मेहनतसे क्या सुखी बनेगा? नहीं मिलता? तपश्चर्यासे परमेश्वरकी प्राप्ति भी हो धर्मग्रन्थोंके सरताज भगवद्गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने सकती है। इंसान अनहोनीको होनी बना देता है, कलतक कर्मयोगका ही समर्थन किया है, कर्मसे दूर भागनेवाले जो बातें असम्भव लगती थीं, वे आज वैज्ञानिकोंके अथक अर्जुनको कर्म करनेके लिये प्रेरित किया है, अर्जुन परिश्रमके कारण सम्भव हो गयी हैं। यहाँतक कि मानव सम्पूर्ण मानवजातिका प्रतिनिधि है, भगवान् श्रीकृष्णने चाँद और मंगलपर भी जा पहुँचा। प्राचीनकालमें ऋषि-उसे समझाया है-मुनियोंने घोर तपश्चर्यासे आश्चर्यजनक सामर्थ्य प्राप्त कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। किया था। राजा भगीरथ कड़ी मेहनत करके स्वर्गसे गंगाको पृथ्वीपर लाये थे, आज भी ऐसे भगीरथ हैं। मा कर्मफलहेतुर्भूमी ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ इक्कीसवीं सदीके पहले दशककी ही बात है-भारतके (2189) तेरा कर्म करनेमात्रमें ही अधिकार है, उसके फलमें बिहार राज्यमें एक गाँवसे शहर जानेके लिये रास्तेमें कभी नहीं, इसलिये तू कर्मों के फलका हेतु मत हो तथा पहाड़ होनेके कारण पचास कि॰मी॰ का फेरा लगाकर तेरी कर्म न करनेमें भी आसक्ति न हो। जाना पड़ता था। दशरथ माँझी नामके एक साधनहीन एक अन्य श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं-किंतु उत्साही व्यक्तिने अपने दमपर छेनी-हथौड़ेसे पहाड़के पत्थरको तोड़नेकी ठानी। शुरूमें लोगोंने उसे उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। पागल कहा, परंतु उनकी परवाह न करते हुए उसने पहाड़ आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मन:॥ तोड़ना शुरू किया। उसकी लगन इतनी थी कि कुछ (गीता ६।५) अपने द्वारा अपना संसार-समुद्रसे उद्धार करे और सालोंमें उसने दस फिट चौड़ाईकी सुरंग पहाड़के आर-अपनेको अधोगतिमें न डाले; क्योंकि यह मनुष्य आप पार खोद डाली। इससे पचास कि॰मी॰ की शहरकी दूरी ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। सिर्फ दस कि॰मी॰तक आ गयी। इस प्रकार अगर लगन, इस तरह श्रीमद्भगवद्गीतामें 'कर्मत्याग' नहीं बल्कि मेहनत, आत्मविश्वास और भगवान्पर श्रद्धा हो तो कोई 'फलत्याग' करनेको कहा है, व्यवहारमें लोग इसके भी मुसीबत शूर आदमीको निराश नहीं कर सकती। विपरीत बरताव करते हैं, हर कोई कर्म नहीं, लेकिन कामयाबी तो उसके पैरोंकी दासी होती है, महाराष्ट्रके उसके फलको प्राथिमकता देता है, इतना ही नहीं महान् समाजसेवक श्रीबाबा आमटे कहते हैं— दूसरोंके श्रमका फल भी हड़पना चाहता है, मनुष्यकी शृंखला असू दे पायी मी गतीचे गीत गायी। इसी वृत्तिके कारण समाजमें भ्रष्टाचार, असंतोष और दुःख करायाला आता आसवांना वेल नाही॥ अशान्ति फैलती है। पैरोंमें बेडियाँ हुईं तो क्या हुआ, मैं चलना बन्द बगैर कर्मके फलकी अपेक्षा करना व्यर्थ है-नहीं करूँगा। उनका शोक करनेके लिये (आँसू बहानेके लिये) मेरे पास वक्त नहीं है। उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथै:। निह सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥ निराशा कामयाबीमें रोड़ा डालती है। एक किसानने किसी भी कार्यमें प्रयास करनेसे ही सफलता प्राप्त अपने खेतमें कुआँ खुदवाना शुरू किया, बीस फीट होती है, केवल इच्छा करनेसे नहीं। सोये हुए शेरके खुदवानेके बाद पानी नहीं मिला तो उसने दूसरी जगहपर मुँहमें प्राणी स्वयं थोड़े ही घुसनेवाले हैं। पच्चीस फीट खुदवाया, फिर भी पानी नहीं मिला। उसने

संख्या ७] नसीबकी चाभ	नी कर्मके हाथ ३३
"*********************	\$
तीसरी जगह तीस फीट खुदवाया तो भी पानी नहीं	कर्म (अगले जन्ममें भी) उसके साथ ही जाते हैं।
मिला। वह निराश होकर रोने लगा, उसके एक भले	भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें बार-बार कर्मका समर्थन
मित्रने उसे समझाया—'खोदनेका काम आधा–अधूरा	किया है, निष्काम कर्मयोग तो गीताके सन्देशका सार
छोड़नेसे पानी कैसे मिलेगा? पानी मिलनेतक एक ही	है—
जगह खोदते रहो, पानी जरूर मिलेगा।' उसने तीसरी	नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
जगह और दस फीट खोदा, वहाँ उसे पानी-ही-पानी	शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥
मिला। इस कथाका तात्पर्य यह है कि किसी भी काममें	(गीता ३।८)
कामयाबी मिलनेके लिये संयम, साहस, सातत्य और	अर्थात् शास्त्रविधिसे नियत किये हुए स्वधर्मरूप
सतर्कता चाहिये। श्रीचक्रधर स्वामी कहते हैं—' <i>पडे तवं</i>	कर्म कर; क्योंकि कर्म न करनेकी अपेक्षा कर्म करना
<i>धाववे, मरे तवं करावे।</i> (आचारमालिका १९०)	श्रेष्ठ है तथा कर्म न करनेसे तेरा शरीर-निर्वाह भी नहीं
'धड तुटे तवं धावावे, देह पडे तव करावे परि	सिद्ध होगा।
<i>जीवन न सोडावे।</i> (आचारमालिका २१७) इन	भगवान् श्रीचक्रधर स्वामीने भी कहा है—
वचनोंका भावार्थ यह है कि जबतक देहमें जान है,	'आचरेतयाचा धर्मु' (आचारमालिका ५२) अर्थात्
जबतक देह सक्षम है, तबतक कार्य करना चाहिये,	आचरण करनेवालेका ही धर्म होता है। आचरणके बिना
आधा-अधूरा नहीं छोड़ना चाहिये। श्रीचक्रधर स्वामीने	धर्मकी खोखली बातोंका कोई अर्थ नहीं, धर्ममें ज्ञान
तो ऐसा भी कहा है कि ' <i>उपायें न पविजे ऐसें काहीं</i>	(ब्रह्मविद्याका सिद्धान्त) और कर्म (आचरण) इन
<i>असे।</i> '(विचारमालिका १२५) अर्थात् प्रयास करनेसे	दोनोंको महत्त्व दिया गया है। ज्ञानके अभावमें कर्म
भी नहीं मिलता, ऐसा इस संसारमें कुछ भी नहीं है।	अन्धा होता है और कर्मके अभावमें ज्ञान लॅंगड़ा होता
'पुरुष जेतुल जेतुला प्रयत्न करी तेतुल-तेतुले दैव	है। यदि धर्मका आचरण ही न होता हो तो वह
<i>साहयाते करी।</i> (आचारमालिका ११७) अर्थात् पुरुष	धर्म किस कामका? वह पंखहीन पक्षीकी तरह बेकार
जितना ज्यादा प्रयत्न करेगा, उसका भाग्य उतना ज्यादा	है, निम्नलिखित श्लोकमें आचारका विशद महत्त्व
उसकी सहायता करेगा। महाराष्ट्रके संत तुकारामने भी	बताया गया है—
कहा है— 'असाध्य ते साध्य करीता सायास।' अर्थात्	आचारः परमो धर्मः आचारः परमं तपः।
धैर्यके साथ कोशिश करनेसे असाध्य काम भी साध्य हो	आचारः परमं ज्ञानम् आचारात् किं न साध्यते॥
जाता है। उर्दूमें एक कहावत है— <i>'हिम्मत-ए-मर्दा,</i>	आचार श्रेष्ठ धर्म है, आचार श्रेष्ठ तप है, आचार
<i>तो मदद-ए-खुदा'</i> अर्थात् हिम्मत रखनेवालेकी मदद	श्रेष्ठ ज्ञान है, आचारसे क्या नहीं साध्य होता?
परमेश्वर करता है।	दुनियाका कोई भी धर्म कोरे (कर्महीन) दैववादका
लौकिक जीवनमें ही नहीं, पारलौकिक जीवनमें भी	समर्थन नहीं करता, 'निष्काम कर्मयोग' तो हिन्दू धर्मकी
कर्म, आचरण और अभ्यास महत्त्व रखते हैं, अध्यात्म	आधारशिला है। नसीबपर रोनेवालोंके लिये निम्नलिखित
शास्त्रके अनुसार कर्मका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तरसे	श्लोक बहुत उपयुक्त होगा—
जुड़ा रहता है—	उद्यमं साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।	षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥	अर्थात् उद्योग, साहस, धैर्य, बुद्धि, शक्ति, पराक्रम—
जिस तरह हजारों गौओंमें बछड़ा अपनी माताकी	ये छ: गुण जिसके पास हैं, उसकी देवता भी सहायता
तरफ ही जाता है, उसी तरह मनुष्यके किये हुए	करते हैं यानी उसका नसीब फलता है।
	>+

मानसमन्दिर का स्वर्णकलश (डॉ० श्रीरामस्वरूपजी ब्रजपुरिया, विद्यावाचस्पति) गोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसकी रचनाका हेत् करते, वे भी श्रीरामको वापस लानेका प्रण करके वनकी बताते हुए कहते हैं कि मनरूपी हाथी विषयरूपी ओर चल पडते हैं। वनमें जाते समय श्रीराम जहाँ-जहाँ

गये और जिन-जिन ऋषियोंसे भेंट हुई, उन सभी

दावानलमें जल रहा है, वह यदि इस श्रीरामचरितमानसरूपी सरोवरमें आ पड़े तो सुखी हो जाय। उन्होंने श्रीरामचरित-

मानसका रूपक एक सुन्दर सरोवरके रूपमें किया है, इस सरोवरके चार घाट हैं और चारों घाटोंपर चार

वक्ता-श्रोता हैं-

सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि। तेइ एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि॥

(रा०च०मा० १।३६)

वन्दनाके पश्चात् गोस्वामीजीने श्रीरामकथाका प्रारम्भ

इसी दोहेसे किया है। चारों घाटके वक्ता और श्रोता हैं—

(१) शिव-पार्वती, (२) याज्ञवल्क्य-भरद्वाज, (३) काकभुशुण्डि-गरुड और (४) चौथे घाटपर वक्ता हैं गोस्वामी तुलसीदासजी तथा श्रोता है समस्त संत-

समाज। यद्यपि गोस्वामीजी तो इस रचनाको स्वान्त:सुखाय कहते हैं, परंतु उनका 'स्व' इतना विशाल है कि उसमें

सारा विश्व ही समाया है। गोस्वामीजी कहते हैं कि इस श्रीरामचरितमानसमें अनेक प्रसंगोंकी कथाएँ हैं, जो इस

सरोवरके तोते, कोयल आदि रंग-बिरंगे पक्षी हैं— औरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहुबरन बिहंगा॥

(१।३७।१५) यहाँ इनमेंसे कतिपय प्रसंगोंका वर्णन किया जा

रहा है-

अयोध्याकाण्डमें श्रीरामकथामें एक बडा मोड आता है—राजतिलकके स्थानपर चौदह वर्षका वनवास।

वनगमनकी कथा प्रारम्भमें चित्रकूट-निवासतक बडी

मार्मिक है। गोस्वामीजीने भरतके चरित्रको मानवीय सम्बन्धोंकी गरिमा तथा त्यागकी सबसे ऊँची चोटीके रूपमें निरूपित किया है, वह श्रीरामचरितमानसरूपी

मन्दिरके 'स्वर्णकलश'-जैसा है। माता कौसल्या और

स्थानोंपर भरत भी जाते हैं और उसी क्रमसे सभी ऋषियोंसे भेंट करते हैं - यहाँ भरद्वाजमुनिसे भेंटका वर्णन अद्वितीय और हृदयस्पर्शी है।

जब वनगमनके समय श्रीराम प्रयागमें उनके आश्रम पहुँचे तो वे तो जानते ही थे कि श्रीराम

मनुष्यरूपमें परात्पर ब्रह्म ही हैं, इसलिये व्यवहारमें तो वे रामको हृदयसे लगाते हैं, आशीष भी देते हैं, लेकिन उनके अन्तस्में जो रामकी प्रतिष्ठा है, वह तो ब्रह्मकी ही है, इसलिये वे श्रीरामसे भेंटकर 'ब्रह्मानन्द' का

अनुभव करते हैं-मुनि मन मोद न कछु किह जाई। ब्रह्मानंद रासि जनु पाई॥ इतना ही नहीं, वे श्रीरामसे आशीष भी माँगते हैं—

अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरिसज सहज सनेहू॥ इस लीलामें श्रीभरत उनके लघु भ्राता हैं। प्रयागमें गंगा-यमुनाके संगमपर तीर्थराज प्रयागसे यही आशीष

भरत भी चाहते हैं-अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।

जनम जनम रित राम पद यह बरदानु न आन॥ (रा०च०मा० २।२०४) इसलिये जब भरद्वाज मुनि श्रीभरतसे मिलते हैं तो

उन्हें भरतजी अपने ही भाग्यकी साक्षात् मूर्ति प्रतीत होते हैं; क्योंकि आकांक्षा दोनोंकी एक ही है-श्रीरामके चरणोंमें सतत सहज प्रीति, परंतु ऋषियोंकी साधना

(रा०च०मा० २।१०६।८)

(रा०च०मा० २।१०७।८)

[भाग ८९

ज्ञानयोगको साधना भी है—उनका लक्ष्य तो मोक्ष ही है और ब्रह्मानन्द ही उसका फल है। यहाँ ज्ञानसे बढकर भक्तिको महिमा प्रकट की है; क्योंकि ब्रह्मानन्द ही Thinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LQVE BY Avinash Shariful पड़ाव नहीं है, उससे भी आगे मीजिल हैं—

संख्या ७] मानसमन्दिर व	ना स्वर्णकलश ३५
**********************************	**************************************
प्रेमानन्द, जो भक्तकी साधना है। ऋषि भरद्वाज इस	है न अहित देख सकती है। इस दृष्टिसे तो कैकेयी भी
तथ्यको निम्नांकित शब्दोंमें प्रकट करते हैं—	कुमाता नहीं है; क्योंकि उसने तो अपने पुत्रके हितमें ही
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥	वरदान मॉॅंगे थे, परंतु वे परिवारके हितमें नहीं थे। उस
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥	बिगड़ी बातको भरतने ही सँभाला और उसी सन्दर्भमें
(रा०च०मा० २।२१०।४-५)	उन्होंने माताको कुमाता कह दिया, यद्यपि मनमें इसका
श्रीरामके दर्शनसे भी यहाँ भरतका दर्शन श्रेष्ठ	खेद अवश्य है। चित्रकूट पहुँचकर उन्होंने अपनी
कहा गया। प्रयागमें रहकर वर्षोंकी तपस्याका फल	भूलको इस प्रकार स्वीकार भी किया। भरतजीने कहा—
श्रीरामका दर्शन है, लेकिन वह अन्तिम फल नहीं,	बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
श्रीरामके दर्शनका फल श्रीभरतका दर्शन है। ज्ञानके बाद	यहउ कहत मोहि आजु न सोभा। अपनीं समुझि साधु सुचि को भा॥
जो भक्ति होती है, वही परा भक्ति है—गोपीभाव है, जो	मातु मंदि मैं साधु सुचाली। उर अस आनत कोटि कुचाली॥
श्रीभरतमें स्पष्ट दिखता है।	(रा०च०मा० २।२६१।१—३)
पराभक्तिमें भक्तकी अपनी कोई चाह नहीं—मोक्ष	अर्थात् 'माता नीच है और मैं सदाचारी और साधु
भी नहीं—भक्तकी चाह केवल यही है कि उनके इष्टको	हूँ—ऐसा भाव भी हृदयमें उठना करोड़ों दुराचारके
सुख मिले। इष्टके तनिक भी दुःखको वह सहन नहीं	समान है।' वास्तवमें तो यह सारी परिस्थिति तो
कर सकते, संसारके सब दु:ख उससे बहुत छोटे और	देवताओंके राजा इन्द्रके कहनेपर देवी सरस्वतीकी
सहनीय हैं। इसलिये ही भरतने कहा—	योजना थी और उन्होंने मंथराकी मित विपरीत कर दी।
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहिं दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू॥	मंथराके कहनेपर कैकेयी भी पुत्रमोहमें फँस गयी, मगर
नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू॥	भरतपर जोर नहीं चला। फिर भी चित्रकूटकी सभामें
राम बिरहँ तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवन प्रसंगू॥	जब भरतको अपनी बात कहनेका अवसर आया तो
राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥	उन्होंने सरस्वतीका ही स्मरण किया—
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।	हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस तें मुख पंकज आई॥
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥	(रा०च०मा० २।२९७।७)
(रा०च०मा० २।२११।४-५, ७-८, २।२११)	भरतकी इच्छासे ही सरस्वतीने फिर योजनाको
श्रीभरतजीका श्रीरामके प्रति अनन्य प्रेम है—इस	आगे बढ़ाया और श्रीभरत गये थे श्रीरामको वापस
बातकी गवाही भी ऋषि भरद्वाज स्वयं श्रीरामको	लौटाने और लौट आये रामाज्ञा पाकर उनकी खड़ाऊँको
गवाहरूपमें प्रस्तुत करके देते हैं—	सिरपर रखकर और उन्हें ही सिंहासनासीनकर उनकी
सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥	आज्ञासे श्रीरामके राज्यका कार्यभार सँभाला। ऐसा
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हिह सराहत बीती॥	उदात्त और महान् भ्रातृप्रेम तथा धर्माचरणका आदर्श
जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहिं तुम्हरें अनुरागा॥	विश्वके किसी साहित्यमें नहीं है। इसीलिये
(रा०च०मा० २।२०८।३—५)	श्रीरामचरितमानस मात्र एक ग्रन्थ नहीं, अपितु मानसमन्दिर
यद्यपि कहावत तथा शास्त्रवचन तो यही है कि	है, उसमें श्रीराम-सीताकी प्रतिमा है, लक्ष्मणजी उसके
संसारमें किसी पुत्रका कपूत होना तो सम्भव है, लेकिन	ध्वजदण्ड हैं और भरतजी उसके स्वर्णकलश! उनका
किसी भी माताका कुमाता होना सम्भव नहीं है; क्योंकि	अनुपम चरित्र युगों-युगोंतक 'भायप भगति' का पथ-
कोई माँ अपने पुत्रका किसी भी दशामें न अहित चाहती	प्रदर्शक बना रहेगा।
	>

देखते भी हैं कि कुछ व्यक्ति कहते ही हमारी बात मान

लेते हैं या बिना कहे ही समझ जाते हैं और कुछ पूरी बात सुननेके पहले ही इनकार कर देते हैं। यह हमारे द्वारा प्रदत्त ऊर्जाका ही परिणाम होता है। जो देते हैं,

वैसा ही मिलता है-सीधा-सा गणित है, यही सृष्टिका अटल नियम भी है। इसीलिये तो कहते हैं कि ज्ञानीजनोंकी संगतमें रहो और हमेशा सकारात्मकतासे

सराबोर रहो। हमारे द्वारा बोला गया एक शब्द किसीको जीवन दे सकता है, दिशा परिवर्तित कर सकता है, तो किसीको गलत मार्गपर भी ले जा सकता है; क्योंकि शब्द

ब्रह्मस्वरूप है, उसमें अनन्त शक्ति है, हमने इसपर गम्भीरतासे विचार तो किया है, मगर व्यवहारमें नहीं लाते। कहीं भी, कभी भी, कुछ भी बोल देते हैं, फिर किसीके टोकनेपर कहते हैं कि अरे, वह तो मैंने ऐसे

ही कह दिया था" ऐसे ही कैसे"? जबिक नीति कहती है 'सौ बार सोचकर एक बार बोलो।' मगर हम इसके ठीक विपरीत व्यवहार करते हैं। हमें इल्म होना चाहिये कि हमारे द्वारा बोली गयी एक-एक ध्वनि ब्रह्माण्डमें

स्थायी रूपसे व्याप्त होती है यानी शाश्वत हो जाती है। अब तो विज्ञानद्वारा ब्रह्माण्डकी ध्वनियोंको पुन: सुना जा सके, इसके भी प्रयास चल रहे हैं। वस्तुत: 'ध्वनि-विज्ञान' एक स्वतन्त्र विज्ञान है। जिसपर वर्तमान समयमें

व्याप्त प्राचीन वाणीको पकड्कर सुना जा सके।

बच्चोंसे कहा जाता है-'तुम कुछ भी नहीं कर सकते', 'तुम किसी कामके नहीं हो', 'तुम निरे बेवकूफ हो', 'तुम एक काम भी ठीकसे नहीं कर सकते', 'तुम्हारे दिमागमें तो गोबर या भूसा भरा हुआ है', 'देखो! तुम्हारे

भाई-बहन कितने काबिल हैं' आदि-आदि। वाह भाई! इतनी निगेटिव एनर्जी बच्चोंमें भरकर हम क्या चाहते हैं ? यह सब सुनकर क्या बालक कुछ करनेलायक रहेगा? किसी कामका बचेगा? नहीं, कदापि नहीं। कहते हैं कि एक झुठको भी बार-बार बोला जाय तो

हर बार नहीं ... नहीं ... सुनते-सुनते तो समर्थ व्यक्ति भी न चाहते हुए भी नकारा बन सकता है; क्योंकि उसकी सकारात्मक ऊर्जा शनै:-शनै: निगेटिव एनर्जीमें बदलने लगती है। सुनी गयी एक-एक ध्वनि उसकी हर कोशिकाको प्रभावित करती है, अध्यात्मकी दृष्टिसे शनै:-शनै: उसकी मानसिकता वैसी ही होने लगती है,

एक समय बाद यह उसके संस्कार बन जाते हैं। गुणीजन, हमारे बुजुर्ग तो यहाँतक कहते हैं कि 'इनकार' भी सकारात्मक तरीकेसे करना चाहिये। निगेटिव शब्दोंका प्रयोग अच्छे-खासे व्यक्तिका जीवन

जाता है, लेकिन घरमें, समाजमें, विद्यालयमें अकसर

वह सच लगने लगता है। तब नकारात्मक शब्दोंका

दोहराव आलम्बनको कहींका छोड़ेगा? नहीं ना ।।।।।

भाग ८९

बरबाद कर देता है। मसलन, किसी बालकसे बार-बार कई देशोंमें शोधकार्य चल रहे हैं। वैज्ञानिक प्रयासरत हैं कहा जाय कि तुम तो निरे बेवकूफ हो, तो एक-न-और ऐसे यन्त्रके निर्माणकी सोच रहे हैं, जिससे अन्तरिक्षमें एक दिन वह मान ही लेगा कि वह वाकईमें बेवकूफ है; क्योंकि सभी व्यक्ति उसे यही मानते हैं, वे कहते भी

संख्या ७] द्रष्टा	•

हैं। बालककी हर कोशिका इस बातको स्वीकार चुकी	कुरआन शरीफमें भी उल्लिखित है—
होती है। नकारात्मक ऊर्जा उनपर हावी हो चुकी होती	'बच्चोंके मध्य न्यायपूर्वक और समान व्यवहार
है। जबिक सामाजिक एवं नैतिक मान्यता भी यही है	करना चाहिये।'
कि मूर्खको मूर्ख, लँगड़ेको लँगड़ा कभी नहीं कहना	'बच्चोंसे अच्छा व्यवहार करो, उनकी कमियोंको
चाहिये। बात यहीं खत्म नहीं होती, अपितु उपर्युक्त	नजर अन्दाज करते हुए उन्हें सही शिक्षा दें।' (ईसा)
शब्दोंके प्रयोगकर्तापर भी इस बातका निगेटिव प्रभाव	जाहिर है, हर व्यक्ति ब्रह्मस्वरूप है, अनन्त शक्तिसे
पड़ता है। हमारे द्वारा उच्चरित शब्दोंका पहले तो हमपर	सम्पन्न है, लेकिन अज्ञानतावश उसे इस बातका
ही असर पड़ेगा, जाहिर है। यह भी ध्यातव्य है कि	अहसास नहीं हो पाता है और हमें ऐसे व्यक्तिको यही
बेवकूफ या नकारा व्यक्तिसे भी अगर यह कहा जाय	अनुभूति तो करवानी है। अत: सभी व्यक्तियोंको ऐसे
कि तुम तो बहुत बुद्धिमान् हो, कर्मठ हो; यकीन मानिये,	नकारात्मक विचारों, शब्दों, ऊर्जासे बचना चाहिये। यदि
उसमें जादुई शक्तिका संचार होने लगेगा और जल्द ही	सकारात्मकताको नहीं भी अपना सकते तो कम–से–कम
वह बुद्धिमान् एवं कर्मशील बन जायगा। एक दिन वह	नकारात्मकतासे तो अवश्य बचना चाहिये। बच्चोंको
बहुत कुछ कर जायगा; क्योंकि सकारात्मक ऊर्जाके	उत्साह नहीं दे सकते तो कम-से-कम हीनभावना तो
संचारसे वह अपनी तरफसे श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ प्रयास करेगा।	उनमें नहीं भरें। एक बार हीनभावनाके भर जानेके बाद
थोड़ी-सी भी उपलब्धि उसे खुशीसे भर देगी। उसमें	उससे उभरनेमें बरसों लग जाते हैं और कभी-कभी तो
असीम उत्साहका संचार होगा और उत्साहसे बड़ी कोई	आदमी इससे उभर ही नहीं पाता।
शक्ति अखिल सृष्टिमें हो ही नहीं सकती।	तो जाहिर है कि यथासम्भव हमें इन बातोंसे
इस प्रसंगका कड़वा सच तो यह है कि अमूमन,	बचनेकी कोशिश करनी चाहिये। मगर यह इतना
आदमी कहनेके पहले कुछ भी नहीं सोचते। बस, जो	आसान भी नहीं है। यदि कोई बालक कक्षामें उद्दण्डता
मुँहमें आया बोल दिया। उन्हें इस बातका इल्मतक नहीं	करता हो, पढ़ता नहीं हो, हर रोज स्कूल नहीं आता हो,
होता कि वह जो कह रहे हैं, कुछ भी गलत बोलकर	गृहकार्य भी नहीं करता हो, ऐसेमें शिक्षक मारने, पीटने,
किसीकी भी जिन्दगीको बरबादीकी राहपर ढकेल देते	डाँटनेके बजाय यह कहे कि 'तुम अच्छे बच्चे हो',
हैं। अत: बड़ोंको चाहिये कि वे हमेशा, हर हालमें	'रोज स्कूल आ सकते हो', 'तुम पढ़ भी सकते हो',
सकारात्मक विचारोंका ही प्रयोग करें। बल्कि उनकी	'थोड़ी-सी कोशिश करो तो गृहकार्य भी कर सकते
नजरमें जो निठल्ले हैं, उनसे भी यही कहें कि You are	हो।' क्या ऐसा करना सम्भव हो सकता है, जी,
Creater 'तुम स्रष्टा हो', 'तुम अनन्त हो', 'तुममें	बिलकुल नहीं पहला उत्तर ये ही होगा, मगर यह काम
अनन्तकी शक्ति है', आदि आदि। 'तुम चाहते क्या	जरा मुश्किल जरूर है, लेकिन असम्भव कदापि नहीं।
हो?', जो तुम चाहते हो, उसे हर हालमें प्राप्त कर	यह बहुत साहसिक कदम है। सामने सारी विपरीत
सकते हो, बशर्ते कि तुम्हारे काम एवं भाव पवित्र होने	परिस्थितियाँ हों और ऐसेमें सकारात्मक प्रतिक्रिया'''।
चाहिये और स्वयंपर सम्पूर्ण विश्वास तथा आस्था होनी	इस बातपर कुछ दिन पहले पढ़ा हुआ एक सूत्र
चाहिये। इसी सन्दर्भमें ईसाने कहा है—	याद आ रहा है कि हराना बहुत आसान है, मगर
'नन्होंमें-से एक को भी तुच्छ न समझना।'	किसीको जिताना उतना ही मुश्किल। वाकई झल्लाना
(संत मस्ती १८।२४)	बहुत सरल है, मगर प्यारसे समझाना'''। फिर भी
• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •	

सम्भावनाएँ तो हर क्षेत्रमें होती हैं। स्मरण रहे कि दिया है कि वह दूसरे व्यक्तिके लिये किसी भी सन्दर्भमें जिसको हम एकदम नकारा, बुद्ध समझते हैं, वही शख्स निर्णायक बने। कम-से-कम कुछ भी उलटा-सीधा, एक दिन ऐसा कार्य कर गुजरे कि दुनिया देखती रह गलत-सलत बोलकर किसी भी शख्सकी जिन्दगीको जाय; क्योंकि प्रकृति हर व्यक्तिको एक कमी, तो एक बरबाद करनेका तो बिलकुल भी नहीं और फिर यह भी खूबी अवश्य प्रदान करती है। अत: व्यक्ति चाहे तो सब तो जरूरी नहीं कि दूसरोंको परखनेका हमारा नजरिया कुछ कर सकता है, उसमें असीम ऊर्जा निहित होती है। सही ही हो, गलत भी हो सकता है। दुनियामें कोई पारंगत नहीं होता है। इसलिये कहा भी गया है कि वैसे भी हर आदमी, हर काम तो नहीं कर सकता। जिसके लिये यह बना है, वही काम बेहतरीन तरीकेसे निर्णायक नहीं, द्रष्टा बनो। सामनेवालेसे हम जो चाहते

बन सकें। वैसे भी ईश्वरने यह अधिकार किसीको भी नहीं

शिवजी भैया कहानी— (श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

कुछ इस प्रकारके व्यक्ति होते हैं, जिनसे मिलते-काम करनेका विचार माताके सामने रखा। यद्यपि उसकी

जुलते लोग हर काल, समाज और देशमें मिल जाते हैं।

कर सकता है। अपनी रुचिका काम हर कोई बहुत

अच्छा कर लेता है।

मैं शरत बाबूका उपन्यास 'विराज बहू' पढ़ रहा था।

उसमें नीलाम्बर चक्रवर्तीके प्रसंगमें मुझे राजस्थानके शिवजीरामकी याद आ गयी। अगर यह पुस्तक उस अचंलके किसी लेखकद्वारा लिखी गयी होती तो

जानकार लोगोंको नीलाम्बरके चरित्रमें शिवजीरामका भ्रम होता। इस कथाके नायकका जन्म आजसे सौ वर्ष पहले

शेखावाटीके किसी कस्बेमें हुआ था। पिताका देहान्त बहुत पहले हो गया था। साधारण-सी सम्पन्न गृहस्थी

थी। घरमें माता और दो भाई थे। माता यद्यपि पढी-लिखी तो नहीं थी, परन्तु बहुत ही चतुर और बुद्धिमती थी। पतिके मरनेके बाद दोनों पुत्रोंको अच्छी शिक्षा दी।

घर-गृहस्थीको भी सँभालकर रखा। दोनों भाइयोंमें आपसमें इतना प्रेम था कि गाँवके लोग इनको राम-

लक्ष्मणकी जोडीकी उपमा देते। उस समयकी रीतिके

अनुसार दोनोंके विवाह बचपनमें ही हो गये थे।

पहुँच जाता।

उठकर नित्यकर्मके लिये वहाँ चला जाता। साथमें चार-पाँच सेर अनाज ले जाता, जो वहाँ पक्षियोंको चुगा देता। वहाँसे आकर अपनी दो गायोंको दाना-पानी खिलाता, उनके ठाणकी सफाई आदिका सब काम वही करता।

भारी मनसे माताने आज्ञा दे दी।

भाग ८९

फिर स्नान करके नियमसे रामजीके मन्दिर जाता, वे Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma LMADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

हैं, वैसी ऊर्जा उसकी ओर प्रवाहित करें ताकि उसके अन्दर जाकर उसकी मन:स्थितिको बदलनेमें हम सहायक

आयु केवल बीस वर्षकी ही थी, कभी परदेश जानेका अवसर भी नहीं मिला था। यात्राएँ बीहड़ और कष्टमय

थीं, परन्तु पिताका साया सिरपर था नहीं। जो कुछ

पासमें था, वह पिछले वर्षोंमें खर्च हो गया था। इसलिए

सेवाके लिये घरपर छोड़कर वह मुम्बईके लिये विदा हो गया। शिवजीरामके जिम्मे कुछ काम तो था नहीं,

इसलिये भाईके छोटे बच्चेको खेलाता रहता और गाँवमें

कभी साधु-सन्त आते तो उनकी सेवामें सबसे आगे

तीन मील दूर जंगलमें एक कुआँ था। सुबह जल्दी

छोटे भाई शिवजीराम और पत्नीको वृद्धा माताकी

संख्या ७] शिवर्ज	ी भैया ३९

गाँव रहकर वैद्यक और नाड़ी-परीक्षाका अच्छा	कस्बेमें ही गल्लेकी दुकान कर ली, भतीजेको भी साथ
ज्ञान प्राप्त कर लिया था। इसलिये बचे हुए समयमें	ले जाकर काम सिखाने लगा।
गरीब रोगियोंकी चिकित्सा करता और बहुतोंको दवाके	दुकानदारीमें जो सूझ-बूझ और चालाकी चाहिये,
सिवा पथ्य भी अपने पाससे दे देता था।	उसका शिवजीराममें सर्वथा अभाव था। लोग उधार ले
इन सबके अलावा, उसने एक नियम यह भी बना	जाते, रुपया-पैसा देते नहीं। वे जानते थे, शिवजीराम
रखा था कि गाँवमें किसीकी भी मृत्यु हो, वहाँ जरूर	कभी कचहरी जाकर अदायगीके लिये नालिश नहीं
पहुँच जाता और चलावेके सारे कामोंमें पूरे मनोयोगसे	करेगा। आखिर, दो–तीन वर्ष बाद नुकसान देकर दुकान
हिस्सा लेता। चाहे बैसाख-जेठकी गर्मी हो या पूस-	उठानी पड़ी। इसी बीच, भतीजा रामदयाल अपने
माघकी सर्दीकी रात, ऐसा कभी नहीं हुआ कि शिवजीराम	पिताकी तरह ही काफी होशियार हो गया और मुम्बई
ऐसे मौकेपर नहीं पहुँचा हो।	चला गया।
उन दिनों छुआछूतका बहुत विचार था, परन्तु	रामदयालके पिताका वहाँके बड़े व्यापारियोंसे
उसकी मान्यता थी कि मृत्युके बाद भगवान्की जोतमें	अच्छा सम्पर्क था और उसकी ईमानदारीकी साख भी
जोत मिल जाती है। मृतककी कोई जाति नहीं होती।	थी। मुम्बई जाकर उसने कॉटन-एक्सचेंजमें अपने
इसलिये गरीब हरिजनोंके यहाँ भी ऐसे मौकोंपर पहुँच	पिताके नामके पुराने फर्मको फिरसे चालू कर लिया।
जाता। अपने गाँव और आस–पासके देहातमें सब लोग	संयोग ऐसा बना कि थोड़े वर्षीमें ही काम जम गया और
उसको शिवजी भैया कहकर पुकारते थे।	उसके पास लाखों रुपये हो गये।
माता धार्मिक भावनाकी थी और उसकी प्रेरणासे	कई बार चाचाको मुम्बई आनेके लिये रामदयाल
ही शिवजीरामकी इन कामोंमें रुचि हुई थी, परन्तु पत्नी	ने लिखा, परन्तु गाँवमें इतने तरहके काम रहते कि
और भौजाई बराबर नाराज रहतीं। वे कहतीं—'सब	शिवजीराम मुम्बई न जा सका। बादमें द्वारकाधामकी
ऊलजलूल काम तुम्हारे जिम्मे ही पड़े हैं।'	यात्राके समय उसको सपरिवार मुम्बई ठहरनेका मौका
कभी-कभी गाँवके संडे-मुसंडे भी बीमारी या	मिला। वहाँ अपने भतीजेका वैभव और सुनाम देखकर
कष्टोंका बहाना करके ठग ले जाते थे। शिवजीरामके	उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। रामदयालने और उसकी पत्नीने
पास आकर शायद ही कोई निराश लौटा हो। बड़ा भाई	उन्हें सदाके लिये वहीं रहनेका आग्रह किया, परन्तु
तीन-चार वर्षोंके अन्तरालसे गाँव आता और दो-तीन	उसका मन महानगरीमें नहीं लगा और थोड़े दिनों बाद
महीने रहकर फिर मुम्बई चला जाता। माताका देहान्त	ही वापस राजस्थान आ गया। अब शिवजी भैया की
होनेके बाद पत्नी और पुत्रको भी वह अपने साथ मुम्बई	जगह सेठ शिवजीराम हो गया। दान-धर्मकी मात्रा बढ़
ले गया। गाँवमें अब पत्नी और बच्चोंके साथ शिवजीराम	गई, परन्तु प्रौढ़ हो गया था, इसलिये पहले जितनी
अकेले रह गये।	भागदौड़ नहीं कर पाता था।
सन् १९०१ ई० में मुम्बईमें जो महामारी हुई, उसमें	इतने गुणोंके बावजूद उसमें एक कमी रही कि
रामिकशनकी मृत्यु हो गयी। उसकी पत्नी और चौदह	घरकी समस्याओंकी तरफ कभी ध्यान नहीं दिया। दोनों
वर्षका पुत्र रामदयाल दोनों रोते-बिलखते अपने गाँव	लड़िकयोंका विवाह तो अच्छे घरोंमें हो गया, परन्तु
वापस आ गये। शिवजीरामने तो कभी कमाया नहीं था,	एकमात्र लड़का लिख-पढ़ नहीं पाया।
परन्तु अब सारा भार उसपर पड़ा। मुम्बई न जाकर अपने	कुछ ऐसे लोग भी थे, जिनको शिवजीरामके यश

और मान-बड़ाईसे ईर्ष्या होने लगी। उन्होंने मुम्बईमें तो चाचाजीने हिसाबकी जाँच की, न हवेली छोड़नेमें रामदयालके कान भरने शुरू किये कि इतनी मेहनत आपत्ति की और न मुम्बईके फर्मकी साख (गुडविल)-करके कमाते तो तुम हो और वाह-वाही तथा सेठाई सब के बदलेमें ही कुछ चाहा; बल्कि सारे रुपये भी मेरे पास तुम्हारे चाचाजीकी होती है। उसकी स्त्री तो पहलेसे ही ही छोड रहे हैं।

उसे अपने-आपपर ग्लानि और लज्जा हो आयी।

रोता हुआ चाचाके पैरोंपर गिरकर क्षमा माँगने लगा। कहने

लगा—'लोगोंके बहकावे में आकर मैंने यह नासमझी की।

मुझे किसी प्रकारका भी बँटवारा नहीं करना है। बडे भाग्यसे

आप-सरीखे चाचा मिलते हैं। पिताजी तो बचपनमें ही

छोड़कर चले गये। अगर आप पढ़ा-लिखाकर मुझे योग्य

देवदत्तको भी साथ ले गया। वहाँ जाकर उसकी पुरानी

अस्सी वर्षके वृद्ध थे। संयम और त्यागका जीवन रहा,

आदतें छूट गयीं और वह भी काममें लग गया।

कुछ दिनों बाद बम्बई जाते समय अपने छोटे भाई

मैंने जब शिवजीरामको देखा था, उस समय वे

नहीं बनाते तो भला आज हम सबका क्या होता?'

भाग ८९

लोगोंने कही थी, वह सही निकली। चारों तरफ सेठ शिवजीरामकी प्रशंसा हो रही थी। वे जिस तरफसे निकल जाते लोग खड़े होकर, राम-राम करते। सुबह-शाम सैकड़ों अभ्यागतोंके लिये अन्न-क्षेत्र चालू था। मौका देखकर रामदयालने चाचासे बँटवारेके लिये कहा। एक बार तो शिवजीरामको बहुत कष्ट हुआ; पर तुरन्त ही सम्हलकर बोले—'बेटा! कमाया हुआ तो सब तुम्हारे पिताजीका ही है, मैंने तो उम्रभर केवल खर्च ही किया, इसलिये जैसे चाहो कर लो, मुझे इसमें क्या कहना है?' एक कागजपर सम्पत्तिका ब्यौरा लिखा गया। बड़ी हवेली और मुम्बईका फर्म रामदयालने अपने लिये रखना चाहा। नकद रुपयोंका दो बराबरका हिस्सा हुआ।

अपना मकान छोड़कर जानेमें बहुत क्लेश होता है, परन्तु

शिवजीरामके चेहरेपर जरा भी शिकन नहीं आयी। उसने

भरी बैठी थी, पर पतिके डरसे चुप थी। उसके बहुत

कहने-सुननेपर कई वर्षों बाद रामदयाल स्त्री-बच्चों-सहित मुम्बईसे अपने गाँव आया। वास्तवमें ही, जो बात

कहा—'तुम्हारी मान-बड़ाई और इज्जतके लिये बड़ी हवेलीमें रहना सर्वथा उचित भी है। मैं कल ही छोटी हवेलीमें चला जाऊँगा। अब रही नगद रुपयेकी बात, सो मुझे तो अन्दाज ही नहीं था कि अपने पास इतना

सारा रुपया है! मैं इनको कहाँ सम्हाल पाऊँगा? देवदत्त जैसा है, तुम जानते ही हो, इन रुपयोंको तुम अपने पास ही रहने दो। खर्चके लिये जितनी जरूरत होगी, मँगवा लिया करूँगा।' अन्तिम वाक्य कहते हुए उसकी आँखें जरूर गीली हो गयी थीं। रामदयाल सोचने लगा कि न

मुक्तिमिच्छिस चेत्तात विषयान् विषवत्त्यजेः । क्षमार्जवदयाशौचं सत्यं पीयूषवत् पिबेः॥ भाई! यदि तुझे मुक्तिकी इच्छा है तो विषयोंको विषके समान त्याग दे तथा क्षमा, सरलता, दया, पवित्रता और सत्यको अमृतके समान ग्रहण कर। (अष्टावक्रगीता)

इसलिये उस समय भी स्वास्थ्य अच्छा था। दान-धर्मके तौर-तरीके बदल गये थे। सदाव्रत और ब्राह्मण-भोजनके साथ–साथ, उनके द्वारा स्थापित स्कूल, अस्पताल और जच्चाघर भी जनताकी सेवा कर रहे थे। [प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया] (डॉ० श्रीअशोकजी काले) हरियाना, कांकरेज, देवणी, थारपारकर गिने जाते हैं, A1

BCM7 का पूर्ण रूप 'बीटा-केझो-मॉरफीन 7'

है। इन वैज्ञानिकोंके अध्ययनसे प्रभावित होकर कुछ अमीर व्यक्तियोंने न्यूजीलैण्डके नागरिकोंके स्वास्थ्य

रक्षाहेतु BCM7 मुक्त दूधका उत्पादन और वितरण करनेके लिये सन् २००० ई० में एक निजी कम्पनी स्थापित की।

उस कम्पनीका नाम A2 Corporation रखा। दुनियाके अमीर देशोंने नागरिकोंकी स्वास्थ्य-

रशिया, जापान, पोलैण्ड, जर्मनीने A1 दूधके दुष्परिणामोंके अध्ययन किये। उनका कहना है कि BCM7 एक चालाक शैतान है, वह जबतक खूनमें नहीं पहुँचता— उससे कोई खतरा नहीं रहता। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंको

रक्षाके लिये इस विषयमें अनुसन्धान करनेपर जोर दिया।

खूनमें BCM7 पहचाननेकी जाँच विकसित करनेमें सफलता नहीं मिली थी, लेकिन रशियन वैज्ञानिकोंने गायके खुनमें BCM7 ढूँढ़नेका तरीका विकसित किया

और उसका पेटेंट करा लिया। रशियाकी चार अनुसन्धान-संस्थाओंके १२ वैज्ञानिकोंने काम किया। उन्होंने दिखा

दिया कि जो शिशु (१ वर्षसे कम आयुवाले) A1 दुध

पीते हैं, उनके खून में BCM7 आ जाता है। ११०

करोड़ आबादीवाले भारतीयोंके स्वास्थ्यका करीबी सम्बन्ध

इस विषयसे है। हम सब इस संकटसे अनजान हैं। भारतमें विगत ८० से ९० के दशकमें चलाये हुए नस्ल-सुधार अभियानने यूरोपियन गोवंशके वीर्यसे ग्रामीण

क्षेत्रमें पशुपालन विभागने करोड़ों A2 (अच्छी) गायोंको A1 (विषैला) बना दिया है और हम जब बाजारमें थैलीमें दूध लेते हैं, वह कई A1 गायोंके दूधका मिश्रण होता है।

वही पीकर हम बड़े हुए। अब बार-बार यह कहा जा रहा

है कि भारतमें डायबिटीज, दिलकी बीमारियाँ, ऑटोइम्यून रोग बढ़ रहे हैं। भारत इन बीमारियोंकी वैश्विक 'राजधानी'

हो गया है।

आज देश में A2 दूध (स्वास्थ्यरक्षक) A1 (विषैले) दूधके साथ बेचा जा रहा है। यदि हम A2

दुध स्वतन्त्र रूपसे बेचें, उपलब्ध करायें तो भारतकी

भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ

भारतीय गोवंशकी विशेषताएँ

न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने १९९३ ई० में डायबिटीज मुक्त यानी सुरक्षित पाये गये।

(पहले प्रकारका इन्सुलीन डिपेन्डेन्ट), ऑटोइम्यून रोग,

करोनरी आर्टरी डिसीज-जैसी कई बीमारियोंकी जड

यूरोपियन गायोंका दुध होनेका दावा (Hypothesis) पेश

किया है। इस दूधको वे A1 दूध कहते हैं। यूरोपियन गोवंशमेंसे होलस्टीन फ्रिजियन, जर्सी, स्विसब्राउनके

संख्या ७]

दूधमें BCM7 जहर होनेका मुद्दा उठानेके बाद उन्होंने ऐसी गायोंकी पहचानके लिये पशुके बालोंकी जाँच करनेकी प्रणाली विकसित की और उसका पेटेन्ट लिया।

BCM7 पैदा करनेवाले दूधके उस अंशको A1 बीटाकेसीन कहते हैं और उसके पाचनसे जो खतरनाक रस निर्माण होता है, उसे BCM7 कहते हैं। यह नशीला होता है;

क्योंकि इसमें अफीम 'मारफीन' होता है। न्यूजीलैण्डके वैज्ञानिकोंने जब एशियाके गोवंशकी जाँच की तब वे फूले

नहीं समाये। सभी भारतीय गोवंश, जिसमें गीर, साहीवाल,

यही सोच रखकर न्यूजीलैण्डमें A2 दूधके लिये A2 दूधका निर्यातकर अरबों रुपये कमा सकते हैं। इन दस Corporation की स्थापना की गयी थी। वर्षोंमें भारतके गोपालक किसान ५० वर्षोंके अँधेरे युगसे जब न्यूजीलैण्डके नागरिकोंको A2 दूधकी उभर सकते हैं। विकसित देश A2 दूधमें स्वयं पूर्ण हों, आवश्यकता महसूस हुई, उन्हें दूध पानेके लिये १० इसके पहले हम A2 दूधके वैश्विक उत्पादक बन जायँ। वर्षतक इन्तजार करना पड़ा। उन्हें भारतसे A2 गोवंशका इसके लिये हमें निम्नलिखित नीतियाँ अपनानी होंगी— वीर्य या A2 साँड मँगवाने पड़े, फिर उनसे भारतीय १. भारतीय A2 सॉंड्रोंका निर्यात बन्द करें। नस्लकी गायें बनीं और वे A2 दूध देने लगीं, लेकिन २. भारतीय गोवंशके दूधकी A1, A2 स्थिति हमें यह सब करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारे सभी जाननेके लिये राज्य सरकारें जिला स्तरपर जेनेटिक राज्योंमें सैकड़ों गोपालक हैं, जो शुद्ध A2 भारतीय जाँचकी प्रयोगशालाएँ स्थापित करें। ३. A2 दुध बेचकर आनेवाली राशिसे A2 दुधके

गायोंको सैकडोंकी संख्यामें पाल रहे हैं। इसीलिये ऐसा कहना गलत नहीं होगा कि हम खुशनसीब हैं, हमें १० वर्षका इन्तजार आवश्यक नहीं है। करनालके पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानके अध्ययनके नतीजे-भारत सरकारके करनाल-स्थित

आनेवाली पीढ़ियाँ जहरीले दूध A1 से बच सकती हैं।

राष्ट्रीय पशु जेनेटिक अनुसन्धान संस्थानने २००९ ई० में भारतीय गो और भैंस वंशकी जनुकीय (Genetic) जाँच की थी। दोनोंमें A2 जन्क (जीन्स) पाया गया, वे A1 मुक्त पायी गयीं।

भारतसे वीर्य और A2 साँड ले जानेके बाद पर्याप्त मात्रामें A2 दूध मिलनेके लिये १० वर्ष लगेंगे। यह १०

संत उद्बोधन

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

जाये, इसीका नाम भजन है। यही तो भक्ति है। परहितका मेरे निज स्वरूप! जब भगवान् हमारे हैं और हमारे

भीतर ही हैं तो फिर चिन्ता कैसी? शोक कैसा? वे भाव हो, सबके साथ सद्भावना हो—यही तो सेवा है।

लगाया जाय।

सर्वसमर्थ हैं, उनकी महिमाका वारपार नहीं, तो फिर भय कुछ नहीं चाहना ही तो त्याग है। भगवान्के समर्पण

कैसा? उनकी सत्तासे कोई बाहर नहीं, आँखोंसे कोई

हो जाना ही तो प्रेम है। इसीका नाम सच्चा भजन है। ओझल नहीं, तो फिर पश्चात्ताप कैसा? इन बातोंको अपने स्थानपर ठीक बने रहें, तो सभी धर्मात्मा हैं।

भाग ८९

साल भारतके लिये सुहावना अवसर है। हम सिर्फ A2

मानवीय स्वास्थ्यपर होनेवाले अच्छे परिणामोंके

अनुसन्धानके लिये चिकित्सा महाविद्यालयोंको प्रेरित करें।

दृष्टिसे सम्पन्न हो जायँगी। मध्यपूर्वके देश डीजल-

पेट्रोलके बलपर सुसम्पन्न हो गये हैं। हमारा गोवंश

हमारे लिये भाग्यविधाता हो सकता है। आज पुरानी

मूर्तियाँ देशके बाहर ले जाना जैसे प्रतिबन्धित है, वैसे

ही भारतके साँड़ और उनका वीर्य ले जानेपर प्रतिबन्ध

[प्रेषक — श्रीरामदयालजी पोद्दार]

ये बातें यदि राज्य सरकारें करती हैं तो वे आर्थिक

अपने जीवनमें उतार लेनेवाले मनुष्यके आनन्दकी कोई काम छोटा-बडा कोई नहीं है। अपने वर्णाश्रमके

अनुसार सही बना रहे—यही धर्म है। विचारपूर्वक सबसे असंग रहना ही सच्चा वेदान्त है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक यदि भगवान्को ही पसन्द कर लें, तो हममें उनका भगवान्की शरण ग्रहण करना ही वैष्णवता है। इन बातोंके

> जीवनमें आ जानेपर सभीका कल्याण हो जाता है। केवल कथनसे तथा क्रियामात्रसे कभी किसीका कल्याण नहीं हो

प्यार पैदा हो जायगा, उनकी याद आने लगेगी और मन भी लग जायगा। यदि हम उन्हींके नाते सब काम करें, तो विस्मृति कभी न होगी।

सीमा नहीं रहती।

Hinduish Discord उन्हों उन्हों व है से कि हो ज़िल्य कि हो ज़िल्य कि हो ज़िल्य महिल्य कि स्वाप अपना Hinduish Discord उन्हों के सम्बद्धा । MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

साधनोपयोगी पत्र संख्या ७] साधनोपयोगी पत्र उपस्थित हो जायगा, जो आपको नये दु:खोंमें डाल देगा। (१) असंतोष और ईर्ष्यासे दुःख अतः बुद्धिमान् मनुष्योंको चाहिये कि वह इस क्षेत्रमें संतोष करे। महर्षि पतंजिलने अनुभूत सत्य बतलाया है— सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला था। उत्तर देरसे जा रहा है। क्षमा कीजियेगा। **'संतोषादनुत्तमसुखलाभः।'** (योगदर्शन २।४२) आपने अपने मनकी जो स्थिति तथा मानस-'संतोषसे सर्वश्रेष्ठ सुखकी प्राप्ति होती है।' भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें भक्तके लक्षण बतलाते पीड़ाकी जो बात लिखी, सो ऐसी स्थिति इस समय बहुत लोगों—अच्छे-अच्छे विचारशील तथा सम्पन्न पुरुषोंके हुए एक ही प्रसंगमें दो बार संतोषकी चर्चा की है-मनकी हो रही है। इसका कारण, आपने ठीक लिखा 'संतुष्टः सततम्' (१२।१४) है। वह है—'अपनी स्थितिमें असंतोष और दूसरोंकी 'संतुष्टो येन केनचित्।' (१२।१९) स्थितिमें डाह।' 'निरन्तर प्रत्येक परिस्थितिमें सन्तुष्ट' और जिस आप ही बताइये—आपको किस बातकी कमी है? किसी प्रकारसे रहना पड़े, उसीमें सन्तुष्ट रहे। इसका स्त्री है, पुत्र है, मकान है, बड़ा व्यापार है, मान-इज्जत अभिप्राय यह है कि संसारकी भोगदृष्टिसे दु:ख, अभाव, है। फिर भी आप दुखी हैं—इसलिये हैं कि आपके पास प्रतिकूलता, विपत्ति आदि हों तो उनमें भी सन्तुष्ट रहे। जितना जो कुछ है, उससे संतोष नहीं है और दूसरे पद्मपुराणमें कहा गया है-किसीके पास इससे अधिक है तो वह क्यों है, आपके सर्वत्र सम्पदस्तस्य संतुष्टं यस्य मानसम्। पास क्यों नहीं-यह डाह है। अत: आप उससे भी उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतेव भूः॥ अधिक पानेके लिये बेचैन हैं तथा विवेक छोड़कर संतोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्। घुडदौड़में आगे बढ़ना चाहते हैं। मैं ऐसे सज्जनोंको कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतस्य धावताम्॥ जानता हूँ, उनमेंसे कई मुझसे बहुत स्नेहका सम्बन्ध असंतोषः परं दुःखं संतोषः परमं सुखम्। रखते हैं, जो सब तरह धन-सम्पत्ति, मान-कीर्ति होनेपर सुखार्थी पुरुषस्तस्मात् संतुष्टः सततं भवेत्॥ भी असंतोषवश बड़े-बड़े नये व्यापार करने लगे और (सृष्टिखण्ड अ० १९) अब बुरी तरह फँसे कि पहलेकी सम्पत्ति-कीर्ति तो गयी 'जिसका मन सन्तुष्ट है, उसके लिये सर्वत्र सुख-ही, नयी विपत्तियोंसे पिण्ड छुड़ाना कठिन हो रहा है। सम्पत्ति भरी है, कहीं भी दु:ख-विपत्ति नहीं है; वह हर उनमेंसे दो-एकको समझाया भी गया था, पर वे उस हालतमें सुखी है; वैसे ही, जैसे जिसके पैर जूतेसे ढके समय एक ऐसे नशेमें थे कि बात उनकी समझमें आयी हैं, उसके लिये मानो सारी पृथ्वी चमड़ेसे ढकी है। ही नहीं और अब पछताते हैं। संतोषरूपी अमृतसे तृप्त और शान्तचित्तवाले पुरुषोंको प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है और प्रकृतिका जो सुख प्राप्त है, वह धनके लोभसे इधर-उधर दौड़-प्रत्येक पदार्थ, प्रकृतिकी प्रत्येक परिस्थिति अपूर्ण और धूप करनेवालोंको कहाँ मिल सकता है? सबसे बड़ा दु:ख है—'असंतोष' और सबसे बड़ा सुख है—'संतोष'। अनित्य-फलतः परिणाममें दुःखप्रद है। इससे कहीं भी, किसी भी स्थितिपर पहुँच जाइये, कमी मालूम होगी, अतएव जिनको सुख चाहिये, उन्हें प्रत्येक परिस्थितिमें अभावका अनुभव होगा। उस अभावको मिटाने जाइये— निरन्तर सन्तुष्ट रहना चाहिये।' या तो उसके मिटानेके पहले आप मिट जाइयेगा अथवा इन सब बातोंपर तथा शास्त्रवचनोंपर ध्यान दीजिये। आप तो संसारकी दृष्टिसे सब प्रकारसे सुखी और कदाचित् वह मिटा तो दूसरा उससे भी बड़ा अभाव तुरंत

सम्पन्न हैं। आपका यह दु:ख बेसमझीसे असंतोष और होते हैं, उसको वैसे ही वातावरण, संग तथा व्यक्ति ईर्ष्या-दूसरोंके उत्कर्षको न सह सकनेकी दूषित वृत्तिने मिलते हैं, जिससे उन भावोंकी सतत वृद्धि होती है। बुलाया हुआ है। आप इन करोड़ों-करोड़ों अपने ही किसीके सम्बन्धमें मनमें कृविचार कभी मत सरीखे शरीर-मनवाले स्त्री-पुरुषोंकी स्थितिको देखिये, कीजिये कि 'यह हमारा शत्रु ही है। इसके विचार कभी

जो भाँति-भाँतिसे अभावग्रस्त हैं, विपन्न हैं, पूरा खाने-पहननेको नहीं पा रहे हैं। उनकी ओर दयार्द्रहृदयसे देखकर अपनी स्थितिके लिये भगवान्के कृतज्ञ बनिये और भगवान्की दी हुई इस स्थितिसे यथायोग्य यथासाध्य उन अभावग्रस्तोंकी सेवा कीजिये। संतोष, मुदिता और करुणावृत्ति मनमें आयी कि आप सुखी हो जायँगे।

अपनी स्थितिपर संतोष करना, दूसरोंके उत्कर्षको देखकर मुदित होना और दु:खियोंको देखकर करुणापूर्ण हो जाना—मानवका परम कर्तव्य है और यह दु:खनाशका सर्वोत्तम उपाय है। शेष भगवत्कृपा। (२) मनको सद्भाव—सद्गुणोंसे पूर्ण रखिये!

आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि बहुत बार अपने ही मनके भावोंकी प्रतिमूर्ति बाहर दूसरोंमें दिखायी देती है। जिसके मनमें असत्य, काम, क्रोध,

लोभ, मद, द्वेष, वैर, ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिहिंसा, घृणा आदि दुर्भाव और दोष भरे रहते हैं, उसे जगत्के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपसे ये दोष ही दिखायी देते हैं। जितने दोष दीखते हैं, उतनी ही उनके प्रति द्वेष, घृणाकी

वृत्तियाँ बनती तथा बढ़ती हैं। इसके विपरीत जिनके मनमें सत्य, त्याग, क्षमा, संतोष, विनय, मुदिता, प्रेम, सेवा, करुणा, सहानुभूति, सौहार्द, शील, परदु:खकातरता,

वात्सल्य आदि सद्भाव और सद्गुण रहते हैं, उन्हें जगत्के प्रत्येक मनुष्यमें न्यूनाधिक रूपमें ये सद्गुण ही दिखायी देते हैं। फलत: सबके प्रति उनका आत्मीयभाव,

सौहार्द, सेवा-तत्परता आदि बढ़ते रहते हैं, जिससे परस्पर सुख-समृद्धि तथा त्याग-प्रेमकी वृद्धि होती है।

अतएव आप अपने मनसे दुर्भावों, दुर्विचारों और दोषोंको

निकालकर उनकी जगह सद्भाव, सिद्धचार और सद्गुणोंको

भरिये और उनको बढाइये। जिसके जैसे मानस—भाव

ये दुर्गुण ही सदा वर्तमान रहेंगे; कभी भी इसमें सद्गुण आ ही नहीं सकते। यह कभी उठ ही नहीं सकता, गिरता ही रहेगा। इसका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा;

इसको सद्बृद्धि कभी आयेगी ही नहीं और इसका सद्भाग्य कभी प्रकट होगा ही नहीं।' प्रथम तो यह बात है कि किसीके सम्बन्धमें

प्रेमके हो ही नहीं सकते। यह कभी सद्विचार, सद्व्यवहार

कर ही नहीं सकता; इसमें दुर्गुण-ही-दुर्गण भरे हैं और

आपका सोचना सर्वदा गलत या न्यूनाधिक रूपसे गलत हो सकता है। किसी भी कारणवश जिसके प्रति आपकी द्वेषबुद्धि हो जाती है, उसके लिये आपकी आँख ही बदल जाती है। आप मिथ्या नहीं बोलते, पर आपकी

बदली हुई आँखें—जैसे हरा चश्मा लगा लेनेपर सब कुछ हरा ही दीखता है, वैसे ही—उसमें गुण न देखकर दोष ही देखती हैं। दूसरे किसीको अवगुणोंकी खान मानना और उसके सद्गुणसम्पन्न बननेमें अविश्वास

सकते हैं—

करना—सर्वसमर्थ सर्वसुहृद् भगवान्की कृपा तथा शक्तिपर सन्देह करना है। भगवान् क्षणभरमें क्या-से-क्या कर मसकिह करइ बिरंचि प्रभु अजिह मसक ते हीन। 'प्रभु चाहें तो मच्छरको ब्रह्मा बना सकते हैं और

भाग ८९

ब्रह्माको मच्छर बना दे सकते हैं। उनकी शक्ति तथा कृपापर विश्वास कीजिये और यदि किसीमें दोष-दुर्गुण दिखायी दें तो प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि वे अपनी सहज

कृपासे उसके दोष-दुर्गुणोंका नाश करके उसे सर्वथा निर्दोष एवं सद्गुण-सम्पन्न बना दें और ऐसी कृपा करें, जिससे आपको सभीमें भगवान् तथा भगवान्के सभी

दिव्य गुण ही दिखायी दें। यही संतकी आँख है, जो भगवत्कृपासे प्राप्त होती है और इसी स्थितिको मानवताका विकास कह सकते हैं। शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण कृष्णपक्ष							
तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि			
		श्रवण दिनमें ९। ४६ बजेतक	१अगस्त	कुम्भराशि रात्रिमें ९।५ बजेसे, पंचकारम्भ रात्रिमें ९।५ बजे।			
		धनिष्ठा 😗 ८। २५ बजेतक	٦ ,,	भद्रा रात्रिमें ११। १४ बजेसे।			
तृतीया 🕖 १०। ३ बजेतक	सोम	शतभिषा प्रातः ६।५२ बजेतक	३ ,,	श्रावण सोमवारव्रत, भद्रा दिनमें १०। ३ बजेतक, मीनराशि रात्रिमें			
		पू० भा० रात्रिशेष ५।१३ बजेतक		११।३८ बजेसे, संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय रात्रिमें ८।५४			
				बजे, आश्लेषाका सूर्य रात्रिमें ३। ३१ बजे।			
		उ० भा० रात्रिमें ३।३३ बजेतक	8 ,,	मूल रात्रिमें ३। ३३ बजेसे।			
पंचमी रात्रिशेष ५। ७ बजेतक				· ·			
षष्ठी रात्रिमें २।४२ बजेतक	बुध	रेवती 😗 १।१६ बजेतक	۷ ,,	भद्रा रात्रिमें २।४२ बजेसे, मेषराशि रात्रिमें १।५६ बजेसे, पंचक			
				समाप्त रात्रिमें १।५६ बजे।			

अश्विनी 🗤 १२।२८ बजेतक भरणी 😗 ११।१३ बजेतक 🛮 शुक्र शनि कृत्तिका 😗 १०।१६ बजेतक नवमी 🦙 ८। ३९ बजेतक

अष्टमी 🔑 १०। २४ बजेतक

सप्तमी " १२। २७ बजेतक गुरु

रवि

सोम

मंगल

बुध

वार

गुरु

रवि

सोम

मूल

आर्द्रा

पुष्य

दशमी 🦙 ७। १६ बजेतक

एकादशी सायं ६। १७ बजेतक

द्वादशी 🕠 ५। ४८ बजेतक

त्रयोदशी 🔑 ५। ४९ बजेतक

तिथि

चतुर्दशी 🔑 ६ । २२ बजेतक | गुरु

अमावस्या रात्रिमें ७। २२ बजेतक 🛮 शुक्र

प्रतिपदा रात्रिमें ८।५० बजेतक शिन

द्वितीया 😗 १०। ३७) बजेतक 🕶 रिव

तृतीया 🗤 १२। ३८ बजेतक सोम

चतुर्थी 😗 २।४० बजेतक मंगल

पंचमी रात्रिशेष ४। ३४ बजेतक बुध

षष्ठी प्रात: ६ । १२ बजेतक शुक्र

सप्तमीदिनमें ७। २६ बजेतक शनि

दशमी ११८।१३ बजेतक मंगल

एकादशी 🕶 ७। २९ बजेतक बुध

द्वादशी प्रात: ६।११ बजेतक गुरु

पूर्णिमा ''१२। ३९ बजेतक शिनि

त्रयोदशी रात्रिशेष ४ ।४२ बजेतक चतुर्दशी रात्रिमें २। ४८ बजेतक राष्ट्रक

अष्टमी 🕶 ८। १४ बजेतक

नवमी 😗 ८। २८ बजेतक

षष्ठी अहोरात्र

संख्या ७]

मृगशिरा 😗 ९।२९ बजेतक 🛛 १०

| आश्लेषा 🕶 १। ३९ बजेतक | १४

पू० फा० प्रात: ६।१७ बजेतक १७

उ० फा० दिनमें ८।५३ बजेतक | १८

हस्त '' ११। २९ बजेतक १९

चित्रा '' १।५४ बजेतक

विशाखा सायं ५ । ४० बजेतक

ज्येष्ठा ११७।३६ बजेतक

पु० षा० 🗤 ७ । ३४ बजेतक

अनुराधा रात्रिमें ६।५४ बजेतक | २३

^{११}७।४९ बजेतक

उ० षा० ११६।५३ बजेतक २७

श्रवण सायं ५।५३ बजेतक २८

धनिष्ठा दिनमें ४।३६ बजेतक २९

स्वाती ''४।० बजेतक

नक्षत्र

पू० फा० अहोरात्र

😗 ९।४७ बजेतक | ११

🗤 ११।५३ बजेतक |१३ 🕠

पुनर्वसु 😗 १०।३५ बजेतक |१२ 🕠

ξ " भद्रा दिनमें १।३५ बजेतक, **शुक्रास्त पश्चिम** में सायं ६।० बजे, **मूल** 9 ,,

रात्रिमें १२। २८ बजेतक। वृषराशि रात्रिशेष ४। ५९ बजे। ረ ,, रोहिणी 😗 ९।४० बजेतक

,,

,,

9 ,,

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वर्षा-ऋतु, श्रावण शुक्लपक्ष

दिनांक

१६

२० "

२१ "

२२ ,,

२४

२५

२६ "

,,

,,

"

"

भौमप्रदोषव्रत।

मघा रात्रिमें ३। ४९ बजेतक १५ अगस्त स्वतन्त्रता-दिवस, मूल रात्रिमें ३। ४९ बजेतक।

भद्रा सायं ५।४९ बजेसे, कर्कराशि दिनमें ४।२३ बजेसे, गुरु अस्त पश्चिममें प्रात: ६। १४ बजे। भद्रा प्रात: ६।६ बजे, मूल रात्रिमें ११।५६ बजेसे।

धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री-जयन्ती।

मूल सायं ६।५४ बजेसे।

सूर्य प्रात: ६।५० बजे।

एकादशीव्रत (सबका)।

पंचकारम्भ रात्रिशेष ५। १४ बजे।

प्रदोषव्रत।

सिंहराशि रात्रिमें १। ३९ बजेसे, अमावस्या।

मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि

कन्याराशि दिनमें १२।५६ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत, सिंह-संक्रान्ति

भद्रा दिनमें १।३९ बजेसे रात्रिमें २।४० बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**

भद्रा दिनमें ७। २६ बजेसे रात्रिमें ७। ४९ बजेतक, वृश्चिकराशि दिनमें

धनुराशि रात्रिमें ७। ३६ बजेसे, श्रावण सोमवारव्रत, सायन कन्याका

भद्रा दिनमें ७। २९ बजेतक, मकरराशि रात्रिमें १। २४ बजेसे, पुत्रदा

भद्रा रात्रिमें २। ४८ बजेसे, कुम्भराशि रात्रिशेष ५। १४ बजेसे,

भद्रा दिनमें १।४४ बजेतक, पूर्णिमा, रक्षाबन्धन दिनमें १।४४ के बाद।

भद्रा रात्रिमें ७।५० बजेसे, मूल रात्रिमें ७।४९ बजेतक।

रात्रिमें २।१९ बजे, **मघाका सूर्य** रात्रिमें २।१९ बजे।

कलकी अवतार, शुक्रोदय पूर्वमें दिनमें ८। ४७ बजे।

११।१५ बजेसे, गोस्वामी श्रीतुलसीदास-जयन्ती।

तुलाराशि रात्रिमें १२।४१ बजेसे, नागपंचमी।

भद्रा दिनमें ७।५८ बजेसे रात्रिमें ७।१६ बजेतक।

श्रावण सोमवारव्रत, मिथुनराशि दिनमें ९। ३५ बजेसे, कामदा एकादशीव्रत (सबका)।

कृपानुभूति 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्ने अपने भक्तोंको यह बस, मैं फटाफट उठा, पूड़ी-सब्जी बनायी और दौड़ता आश्वासन दिया है कि उनके योगक्षेमकी व्यवस्था मैं

स्वयं करता हूँ। इस सन्दर्भमें दो घटनाएँ इस प्रकार हैं— (8)

स्वामी विवेकानन्दजीके जीवनकी एक घटना है। तब वे जगत्-प्रसिद्ध नहीं हुए थे और उनका जीवन भौतिक

अभावोंसे गुजर रहा था। अमेरिका-यात्रासे पूर्व उन्होंने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया। एक बार वे रेलसे यात्रा कर

रहे थे, उन्हें बडी जोरसे भृख-प्यास लग रही थी, किंतु उनके

पास कुछ नहीं था। वे चुपचाप बैठे थे। उनके सामनेकी सीटपर एक सेठजी सपरिवार यात्रा कर रहे थे, उनके पास

सब साधन थे, वे खाते-पीते यात्रा कर रहे थे। वे स्वामीजीकी पूरी यात्रामें हँसी उड़ाते रहे कि कैसा हट्टा-कट्टा संन्यासी है, निठल्ला है; कुछ काम नहीं करता, फोकटका खाता

है। एक हम हैं, खुब मेहनत करते हैं और ठाटसे रहते हैं। स्वामीजीने उसकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया, चुप बैठे रहे। गन्तव्य स्टेशन आया, सेठजी और स्वामीजी एक साथ उतरे और स्टेशनपर एक पेडके नीचे सीटपर बैठ

गये; किंतु सेठजीका उपहासका क्रम नहीं टूटा। तभी एक हलवाई आया। उसने स्वामीजीको प्रणाम किया, साथ लाये आसनपर बैठाया और गरम-गरम भोजन परोसने लगा तथा एक गिलास पानी रखा। विवेकानन्दजीने

सकुचाकर कहा—'भाई! तुम्हें गलतफहमी हुई है, तुम जिसके लिये कर रहे हो, वह मैं नहीं हूँ। मेरा यहाँ कोई परिचित नहीं, मैं तो एक संन्यासी हूँ।' हलवाई बोला—

मुझे नींद लग गयी। सपनेमें भगवान् राम आये और कहा— 'तु यहाँ बैठा-बैठा ऊँघ रहा है, वहाँ स्टेशनपर मेरा भक्त

भूखा-प्यासा बैठा है। जल्दी उठ, पूड़ी-सब्जी बना और ठण्डा पानी ले जाना मत भूलना, उसे बहुत प्यास लगी है।' मैं चौंककर जगा, किंतु भ्रम समझकर फिर सो गया।

महाराज! मैं तो अपनी दुकानपर बैठा ऊँघ रहा था। तभी

भगवान् राम फिर सपनेमें आये और डाँटकर कहा—'सुनता नहीं है, फिर सो गया, चल उठ, मैंने जैसा कहा है, वैसा

आया हूँ। आप वही हैं, जैसा मैंने सपनेमें देखा था। सेठजीने यह सब सुना, देखा और उन्हें अपने कृत्यपर ग्लानि हुई और उन्होंने स्वामीजीके चरण पकड़कर माफी माँगी।

(7) मेरे जीवनकी एक घटना है। बात सन् १९७४ ई० की है। मेरी नौकरी अजमेर शहरमें लगी और मेरा मित्र

सिंचाई विभाग भीलवाडामें ओवरसियर हो गया। वह कभी डाकबँगलेमें रह जाता, कभी किरायेके मकानमें रात गुजार देता। हम दोनों अविवाहित थे। एक दिन हमारा कार्यक्रम

बना धनोपमाता (भीलवाड़ा)-के दर्शन करनेका। उसने कहा कि तुम डाकबँगले आ जाना। मैं निर्धारित कार्यक्रमके अनुसार सुबह नहा-धोकर बसमें बैठकर डाकबँगलेवाली रोडपर उतर गया। उस दिन बहुत तेज बारिश हुई थी और

डाकबँगलेकी कच्ची रोडपर कीचड हो गया। अभी मैं कुछ सोच ही रहा था कि उधरसे डाकबँगलेका चपरासी आता दिखायी दिया। उसने मुझे बताया कि साहब तो बरसातके कारण रातको ही किरायेके मकानपर सोने चले

भूख-प्याससे मैं व्याकुल था। पैसे तो मेरे पास थे, पर सडक सूनी थी; मैं पैदल ही आगेकी ओर चल पडा। रास्तेमें एक गाँव आया; मैंने एक ग्रामीणसे पूछा—'यहाँ कहीं चाय-नमकीन मिल जायगी क्या ?' उसने एक मकानकी

तरफ इशारा कर दिया। मैंने उस मकानपर जाकर चायके

लिये प्रार्थना की; क्योंकि मेरे लिये वह अनजान जगह थी।

गये थे। अब मैं क्या करता, मेरी तो हालत खराब थी।

मुझे आश्चर्य हुआ जब मकानमालिक एक काँसेकी थालीमें रोटी और कटोरीमें चनेकी दाल लेकर आये। मैं बोला—'भाई! मैंने तो चाय माँगी थी।'वे बोले—'बाबूजी! आप संकोच न करें—मुझे मालूम है आप भूखे हैं।' मैं उसके

प्रेमभरे आग्रहको टाल न सका; वैसे भी मुझे बहुत भूख लग रही थी। वह भोजन मुझे अमृत-समान लगा। फिर मेरी मित्रसे मुलाकात हो गयी एवं माताका दर्शन भी हो गया।

इन घटनाओंसे सिद्ध होता है कि परमपिता किसानुसार हें अपन्य से हें जाता करते हैं प्राप्त करते है

संख्या ७] पढ़ो, समइ	गो और करो ४७						
******************************	**************************************						
पढ़ो, समझो और करो							
(१)	पैसे किसे देने हैं, इसपर विचार करते हुए मैंने						
साथी हाथ बढ़ाना	जेबमें हाथ डाला। मुझे लगा कि अभी इन दोनोंमें पैसोंके						
पूना और मुम्बईमें अधिक अन्तर नहीं है। अन्तर	लिये झगड़ा या मारपीट होगी। 'समर्थहीका सब कुछ'						
इतना ही है कि पूना है शान्त और स्वस्थ, जबकि मुम्बई	इस सिद्धान्तके अनुसार मैंने बादमें आनेवाले पालिशवालेको						
अलमस्त और अस्वस्थ। तूफानमें चक्कर काटते हुए	पैसे दिये। उसने पैसे ले तो लिये, परंतु तुरंत ही						
पत्तेकी भाँति लोग वहाँ दौड़ते रहते हैं। लोकल ट्रेनें	पहलेवालेको दे दिये। प्रेमसे पीठ थपथपायी और हाथ						
मुम्बईको प्राण ही हैं। लोग जब 'आठ बत्तीसवाली	मिलाकर चल दिया। अब मैं थोड़ा स्वस्थ हुआ। मैंने						
पकड़नी है,' 'पाँच-पच्चीसवाली लगती है, चली	उसको तुरंत वापस बुलाया और सीधा प्रश्न किया—						
गयी।' 'साढ़े सातवालीकी आज आशा नहीं है'—ऐसा	'यह क्या चक्कर है?'						
बोलते हैं, तब कितना अजीब लगता है!	'साब, ये किशन तीन महीने पूर्व चलती लोकल						
छुट्टियोंमें मुम्बई गया था। दादर स्टेशनपर बैठा था।	ट्रेनसे बाहर गिर गया था। बहुत चोट आयी। पैरमें १८						
कहीं जानेकी शीघ्रता नहीं थी, इसलिये निश्चिन्तताके साथ	से २० टाँके आये और हाथमें भी बहुत चोट आयी।						
घड़ीकी सुइयोंकी तरह दौड़ती हुई भीड़को देखनेका आनन्द	बेचारा बच ही गया; नहीं तो वृद्धा माँ और पाँच						
ले रहा था। पूनामें यह सब कहाँ देखनेको मिलता है।	बहनोंका क्या होता—इधर-उधर भटकती फिरतीं।'						
'साब! पोलिश'—मेरे रंगमें भंग हुआ।	अब किशन पहलेकी भाँति स्फूर्तिसे काम नहीं कर						
मैंने मना किया, परंतु फिर न जाने क्या सोचकर	सकेगा, यह सोचकर स्टेशनपर रहनेवाले हम सब						
'चमक बढ़ाओं' वाली बात कहकर अपना जूता आगे	साथियोंने तय किया कि प्रत्येक अपने एक जोड़ी जूतेकी						
बढ़ा दिया। पालिशवालेने अपने साधन नीचे रखे और	आय नित्य किशनको दिया करेंगे और अवसर पड़नेपर						
में भी पालिश करनेवाले स्टैण्डके पास ही स्थितप्रज्ञ की	उसके काममें सहायता भी करेंगे। दूसरे पालिश करनेवालेकी						
तरह खड़ा हो गया।	बात सुनकर मैं तो चिकत ही रह गया।						
उसने काम प्रारम्भ तो किया, परंतु उसमें मजा नहीं	किशन तथा उसके साथी स्टेशनपर आने–जानेवाले						
आ रहा था। मुम्बईवालोंकी स्फूर्ति उसमें नहीं थी। जब	सब यात्रियोंको मानो सन्देश दे रहे हों—'साथी हाथ						
अधिक देर खड़ा रहना सहन-शक्तिके बाहर हो गया,	बढ़ाना।'						
तब मुँहसे निकल गया—'अरे भाई! कैसे ठण्डे दिमागसे	इस बातको कितना समय हुआ, स्मरण नहीं, परंतु						
काम करते हो। कुछ शीघ्रता करो।' वह मौन रहा। मुझे	जब भी मैं मुम्बई या विशेषकर दादर स्टेशनपर जाता						
उसका मौन रहना अच्छा नहीं लगा, परंतु किया क्या	हूँ, तब किशन और उसके साथी स्मरण हो ही आते हैं।						
जाय ? इतनेमें दूसरा पालिशवाला वहाँ आ गया। उसने	दादर स्टेशनकी अपार भीड़में भी मेरी आँखें किशनको						
इसको तुरंत अलग कर दिया और स्वयं काममें जुट	ढूँढ़ती रहती हैं। (अखण्ड-आनन्द)						
गया। काम एकदम फटाफट। पहलेवाला गूँगेकी तरह	—विजय रतिलाल पीर						
एक ओर खड़ा रहा। मुझे ऐसा लगा कि यह अभी	(7)						
नया-ही-नया है। इसलिये ये मुम्बईके उस्ताद पालिशवाले	आदर्श शिक्षक						
उसे अपने ढंगसे परेशान करते हैं।	यह घटना लगभग छह–सात वर्ष पूर्वकी है। मुझे						

भाग ८९ ******************* अपनी बेटीको घरपर पढ़ानेके लिये किसी उपयुक्त और मेरी स्पष्टवादिताके लिये मुझे धन्यवाद भी दिया, शिक्षककी आवश्यकता थी। मैंने अपने एक मित्रको किंतु अत्यन्त विनम्रतासे उन्होंने मेरे इस प्रस्तावको अपनी समस्या बतायी। उन्होंने एक बंगाली सज्जनको अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि जितना वे इस मेरे घर भेज दिया। कक्षाके अन्य बच्चोंसे लेते हैं, उतना ही मेरे से भी लेंगे। वे एक वयोवृद्ध सीधे-सादे व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे उनका यह व्यवहार बड़ा अप्रत्याशित-सा लगा। अपना परिचय दिया। उनसे मेरी बातचीत हुई। उन्होंने मैंने उनसे कहा कि जब मैं स्वेच्छासे अधिक देना चाह बताया कि वे और भी कई बच्चोंको घर जाकर पढाते रहा हूँ तो उसे वे क्यों अस्वीकार कर रहे हैं! पर दादाने हैं। उनकी जीविकाका यही साधन था। मुझे वे ठीक-मुसकराकर मना कर दिया। अन्ततः मुझे उनकी बात ठाक लगे। मैंने अपनी बेटीको उनसे मिलवाया। उन्होंने माननी ही पड़ी। उसकी कापियाँ वगैरह देखीं। उससे उसकी पढ़ाईके मैंने कहा-ठीक है दादा! मैं आपकी बात मान बारेमें पूछा; मैंने उनसे कहा कि वे मेरी बेटीको एक दिन ले रहा हूँ, पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके ऐसा पढ़ाकर देख लें, यदि उन्हें ठीक लगा तो बाकी बातें करनेके पीछे क्या कारण है? इसपर दादाने बड़े हम बादमें तय कर लेंगे। उन्होंने कहा ठीक है। संकोचसे कहा-श्रीवास्तवजी! मैं भी मनुष्य हूँ और अगले दिन वे अपने बताये गये समयपर आ गये। मनुष्योचित दुर्बलताएँ मुझमें भी हैं, यदि मैं आपसे उन्होंने मेरी बेटीको पढ़ाया। पढ़ानेके पश्चात् उन्होंने अधिक पैसा लूँगा तो न चाहते हुए भी आपकी बच्चीपर कहा-यदि आप चाहें तो मैं इसे कलसे पढ़ाने आ अधिक ध्यान दुँगा और इसी कक्षाके अन्य बच्चे जो सकता हूँ। बेटीको मैंने अलग बुलाकर पूछा। उसने आपसे कम पैसे दे रहे हैं, उनपर कम ध्यान दूँगा। यह बताया कि वह उन शिक्षक महोदयके पढ़ानेसे सन्तुष्ट उन बच्चोंके साथ अन्याय होगा। बस, यही कारण है, आशा है आप इसे अन्यथा न लेंगे। है। उनका पढानेका ढंग बहुत अच्छा है और वह उनसे पढ़ना चाहती है। मैंने शिक्षक महोदयको बता दिया-दादाका उत्तर सुनकर मैं चुप हो गया। मन-ही-आप कलसे पढ़ाने आ सकते हैं। मैंने उनके साथ बैठकर मन नतमस्तक हो गया एक ऐसे व्यक्तिके समक्ष, जो कि आजके इस दौरमें जबकि शिक्षाका घोर व्यवसायीकरण सब बातें तय कर लीं कि सप्ताहमें किस-किस दिन आयेंगे और कितने बजेसे कितने बजेतक पढ़ायेंगे हो रहा है, अपनी अन्तरात्माकी आवाजको बिना दबाये, इत्यादि। अब बस अन्तिम बात यह तय करनी थी कि आदर्श शिक्षकका कर्तव्य निभा रहे थे। वे पढ़ानेके लिये हर महीने कितने रुपये लेंगे। -कैलाश पंकज श्रीवास्तव मैंने इस सम्बन्धमें सोच-विचारकर पहलेसे ही (3) एक धनराशि अपने मनमें निश्चित कर रखी थी। फिर मानवताकी मिसाल भी मैंने इस सम्बन्धमें साफ-साफ बात कर लेना उचित यह घटना ३ जून, सन् २०१४ ई० की है, मैं समझा। उन्होंने जो धनराशि बतायी, वह मेरी सोची हुई कुम्भराज जिला गुना (म०प्र०)-का निवासी हूँ। मेरी धनराशिसे कम थी और उनके परिश्रमको देखते हुए भी पोती गोपिका कासट एक सर्विसके लिये इण्टरव्यू देने मुझे कम ही लग रही थी। अत: मैंने उनसे कहा कि देहली गयी थी। लौटते समय ग्वालियरसे बसद्वारा गुना मैंने तो इससे कुछ अधिक ही सोच रखा था। मैंने उनसे आना था। उसने रात्रि बससे ग्वालियरसे गुनाके लिये वह धनराशि बता भी दी। मेरी बात सुनकर वे मुसकराये प्रस्थान किया। उसके पास एक बैग था, जिसमें सर्विससे

मनन करने योग्य गुण और योग्यता एक थे सेठजी, उनके तीन पुत्र थे। उन्होंने एक उसने बताया—'महात्माजी! मेरे पिताजी एक वर्ष दिन अपने पुत्रोंको बुलाकर कहा—'अब मैं वृद्ध हो गया पहले तीर्थयात्रापर गये थे। रास्तेमें ही उनका स्वर्गवास हूँ। कौन जाने अब कितने दिन जी पाऊँगा। परंतु हो गया। उन्हींके वियोगसे मैं उदास रहने लगा हूँ। मैं तुमलोगोंसे एक बात पूछनेकी इच्छा है। बोलो, तुमलोग उन्हें भूल नहीं सकता।' और इतना कहनेके बाद उसकी मुझे कितना चाहते हो?' आँखोंमें आँसू भर आये। सबसे बड़े पुत्रने कहा—'पिताजी! आपके प्रति उस संन्यासीने पूछा—'तुम्हारे दूसरे भाई हैं?' मेरा प्रेम समुद्रकी तरह अथाह है। मैं आपको बहुत जी हाँ, हम तीन भाई हैं। मझला तो पिताजीके चाहता हूँ।' स्वर्गवास होनेके बाद मौज-मस्तीमें खो गया है। मझले पुत्रने कहा—'पिताजी! आपके प्रति प्रेमकी पिताजीकी सम्पत्ति उड़ा-खा रहा है। मैं तीनोंमें ज्येष्ठ हँ, परंतु स्वस्थ न रहनेके कारण सारा काम-काज मेरा तुलना मैं किसी दूसरेसे नहीं कर सकता।' सबसे छोटेने कहा—'पिताजी! मैं तो इतना जानता सबसे छोटा भाई ही देखता है। वह व्यापारकी देख-हूँ कि आप मेरे पिता हैं और पिता-पुत्र दोनों एक-रेख परिश्रम और ईमानदारीसे करता है, परंतु मझला दूसरेको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।' उसके कार्यमें प्राय: बाधा डालता है, इस कारण हम तीनों पुत्रोंकी बात सुनकर सेठजी चुप रहे। दोनोंको उसीकी चिन्ता रहती है। कुछ दिनोंके बाद सेठजीने अपने मुनीमको बुलाकर संन्यासी वहाँसे उठकर सीधे सेठजीकी गद्दीपर पहुँचे। सेठजीकी कुर्सीपर बैठे एक तेजस्वी युवकने कहा—'मुनीमजी! अब मैं वृद्ध हो गया। मेरी इच्छा है कि अब मैं तीर्थयात्रा कर लूँ और मैं कल ही यात्रापर विनम्रतासे संन्यासीकी ओर देखकर पृछा—'महात्माजी! जानेवाला हूँ। मेरी अनुपस्थितिमें गद्दीका काम-काज आपकी हम क्या सेवा करें?' उसके इतना कहते ही संन्यासी उसके पास जाकर ठीकसे चले, इसका ध्यान रखियेगा। सेठजी दूसरे ही दिन तीर्थयात्रापर निकल पड़े।' एकदम उससे लिपट गये और बोले—'बेटा! तुमने मेरी दो-एक महीने बाद समाचार मिला कि सेठजीका इच्छा पूरी की है। मैं तुम्हारा पिता हूँ। तुम तीनों रास्तेमें ही स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनकर पूरा भाइयोंके गुण और योग्यताकी परखके लिये ही मैंने झुठा परिवार शोकमें डूब गया। समाचार भिजवाया था और एक वर्षतक हरिद्वारमें रहा। सेठजीका सारा व्यापार अब लडकोंके हाथमें आ अब मुझे विश्वास हो गया कि तुम ही मुझे अधिक चाहते हो। तुम्हारेमें वे गुण और योग्यताएँ हैं, जो एक गया था, परंतु सेठजीके इच्छानुसार मुनीमजी गद्दीकी

एक दिन एक वृद्ध संन्यासी सेठजीके घरके दरवाजेपर आ खड़े हुए। उन्होंने देखा कि एक युवक साधारण अवस्थामें उदास-सा कुछ दूर बैठा है। संन्यासीने उसके पास जाकर पूछा—'बेटा! तुम इस तरह

तथा काम-काजकी देख-रेख रखते थे। इस प्रकार एक

वर्ष बीत गया।

मोह छोड़ दिया और वे हरिद्वारमें जाकर भगवद्भजन-उदास क्यों बैदे हो ?' Hindulsm Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

जा रहा हूँ।'

श्रेष्ठ पुत्रमें होना चाहिये। परंतु बेटा! अपने बड़े और

मझले भाइयोंका भी ध्यान रखना और उन्हें भी अपने-

जैसा बनानेकी चेष्टा करना। मैं तो अब वापस हरिद्वार

पुत्रके बहुत समझानेपर भी पिताने घर-गृहस्थीका

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

साधन-सुधा-सिन्धु—कोड 465 (ग्रन्थाकार)—यह ग्रन्थ गीताप्रेससे प्रकाशित ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत लगभग ५० पुस्तकोंका ग्रन्थाकार संकलन है। इसमें परमात्मप्राप्तिके अनेक सुगम उपायोंका सरल भाषामें अत्यन्त मार्मिक विवेचन किया गया है। यह ग्रन्थ प्रत्येक देश, वेष, भाषा एवं सम्प्रदायके साधकोंके लिये साधनकी उपयोगी एवं मार्गदर्शक सामग्रीसे युक्त है। पृष्ठ-संख्या १००८, कपड़ेकी मजबूत जिल्द एवं सुन्दर रंगीन, लेमिनेटेड आवरणसिहत। मूल्य ₹१७०, (कोड 1630) गुजराती और (कोड 1473) ओड़िआमें भी उपलब्ध।

नारी-अङ्क (कोड 43) ग्रन्थाकार—इसमें भारतकी महान् नारियोंके प्रेरणादायी आदर्श चिरित्र तथा नारीविषयक विभिन्न समस्याओंपर विस्तृत चर्चा और उनका भारतीय आदर्शोचित समाधान है। नारीमात्रके लिये आत्मबोध करानेवाला यह अत्यन्त उपयोगी और प्रेरणादायी ग्रन्थ है। मल्य ₹२४०

देवीपुराण [महाभागवत] (कोड 1610) ग्रन्थाकार—इस पुराणमें मुख्य रूपसे भगवती महाशक्तिके माहात्म्य एवं उनके विभिन्न चिरत्रोंका विस्तृत वर्णन है। इसमें मूल प्रकृति भगवतीके गङ्गा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, तुलसी आदि रूपोंमें विवर्तित होनेके मनोरम आख्यान, उपासना आदिका सुन्दर विवेचन है। मल्य ₹१२०

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड (मूल) गुटका (कोड 78) मूल्य ₹२५ (कोड 1953) पुस्तकाकार मूल्य ₹४० भी उपलब्ध।

श्रीरामचरितमानस (कोड 1463) ओड़िआ—गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजके द्वारा प्रणीत श्रीरामचरितमानस हिन्दी-साहित्यकी सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करनेसे एवं इसके उपदेशोंके अनुरूप आचरण करनेसे मानवमात्रके कल्याणके साथ भगवत्प्रेमकी सहज ही प्राप्ति सम्भव है। मृल्य ₹२५०

नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

श्रीविष्णुपुराण (कोड 2006) गुजराती—श्रीपराशर ऋषि-प्रणीत यह पुराण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके प्रतिपाद्य भगवान् विष्णु हैं, जो सृष्टिके आदिकारण, नित्य, अक्षय, अव्यय तथा एकरस हैं। इसमें आकाश आदि भूतोंका परिमाण, समुद्र, सूर्य आदिका परिमाण, पर्वत, देवतादिकी उत्पत्ति, मन्वन्तर, कल्प-विभाग, सम्पूर्ण धर्म एवं देविष तथा राजिषयोंके चिरित्रका विशद वर्णन है। मुल्य ₹१५०

श्रीमद्भागवतमहापुराण वचनम् (कोड 2007) तेलुगु—यह ग्रन्थ भगवान् व्यासकी उत्कृष्ट रचना श्रीमद्भागवतका तेलुगु वर्णान्तरण और अनुवाद है। तेलुगु भाषा-भाषी पाठकोंके कल्याणार्थ इसका प्रकाशन किया गया है। मृल्य ₹२८०

		बृहदाकार स	गाइज	ामें ः	उपलब्ध	ग्रन्थ		
1907	श्रीमद्वाल्मीकीय	रामायण—केवल हिन्दी	४५०	1	गीता-तत्त्व-विवे	<mark>चिनी</mark> —हिन्द	दी-टीका	२५०
1389	श्रीरामचरितमान	<mark>ास</mark> —टीकासहित, वि० सं०	€00	5	गीता-साधक-सं	<mark>जीवनी</mark> —हि	इन्दी-टीका	४५०
1436	श्रीरामचरितमान	ास—केवल मूल	२५०	25	श्रीशुकसुधासाग	र—केवल	हिन्दी	400
80	श्रीरामचरितमान	<mark>ास</mark> —टीकासहित	400		व्यवस्थापक	—गीताप्रेस	, गोरखपुर—2	73005

मासिक 'कल्याण' kalyan-gitapress.org पर मुफ्त पढ़ें।



प्र० ति० २०-६-२०१५

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014-2016

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014-2016

श्रावणमासमें पाठ-पारायण एवं स्वाध्याय-हेतु प्रमुख प्रकाशन

श्रावणमास १ अगस्त दिन शनिवारसे प्रारम्भ हो रहा है।



इस पुराणमें परात्पर ब्रह्म श्रीशिवके कल्याणकारी स्वरूपका तात्त्विक विवेचन, रहस्य, महिमा और उपासनाका विस्तृत वर्णन है। शिव-महिमा, लीला-कथाओंके अतिरिक्त इसमें पूजा-पद्धति, अनेक ज्ञानप्रद आख्यान और शिक्षाप्रद कथाओंका सुन्दर संयोजन है। भगवान् शिवके उपासकोंके लिये यह पुराण संग्रह एवं स्वाध्यायका विषय है। मूल्य ₹२००, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹४० अतिरिक्त। (कोड 1468) विशिष्ट सं० मूल्य ₹२५०, (कोड 2020)

संक्षिप्त शिवपुराण, सचित्र (मोटा टाइप) कोड 789, ग्रन्थाकार, सजिल्द—

मुल, मोटा टाइप, मुल्य ₹२५०, डाक एवं पैकिंगखर्च ₹४५ अतिरिक्त। **(कोड 1286)** गुजराती, (कोड 975) तेलुगु, (कोड 1937) बँगला, (कोड 1926) कन्नड भी उपलब्ध।

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹	कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
1985	लिङ्गमहापुराण —सटीक	२००	204	ॐ नमः शिवाय -चित्रकथा	२५	228	शिवचालीसा-पॉकेट साइज	₹
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	३५	1343	हर हर महादेव "	२५	1185	शिवचालीसा-लघु (बँगला भी)	2
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर-सानुवाद	30	1954	शिव-स्मरण	१०	1599	श्रीशिवसहस्त्रनामस्तोत्रम्	6
1899	श्रावणमास-माहात्म्य "	32	1367	श्रीसत्यनारायणव्रतकथा	१२	230	अमोघ शिवकवच	3
1156	एकादश रुद्र (शिव)-चित्रकथा	५०	563	शिवमहिम्न:स्तोत्र	પ	1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	३०
			2					
श्रीमद्भागवतमहापुराण								

श्रीमद्भागवतमहापुराण — बेड्या, सटीक, सजिल्द, मोटा टाइप — श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीकको पत्राकारकी तरह बेडिआ ग्रन्थाकार, मोटा टाइपमें प्रकाशित किया गया है, जिससे भागवतका पाठ करनेवालोंको सुविधा होगी एवं व्यास-पीठपर भी इसको प्रतिस्थापित किया जा सकता है। (कोड 1951-1952) दो खण्डोंमें सेट। दोनों खण्डोंका मृल्य ₹८००

श्रीमद्भागवतके अन्य संस्करण

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 26-27) सटीक दो खण्डोंमें सामान्य संस्करण। (ओडिआ, बँगला, मराठी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु, तमिल, अंग्रेजी)

श्रीमद्भागवत-स्थासागर (कोड 1930) ग्रन्थाकार— सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, (गुजराती, मराठी, तेलुगू, कन्नड भी)

श्रीमद्भागवत-सुधासागर (कोड 1945) ग्रन्थाकार,

विशिष्ट संस्करण श्रीशुक-सुधासागर (कोड 25) बृहदाकार—भाषानुवाद।

टाइप (तेलग भी) श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 124)—मझला मूल।

श्रीमद्भागवतमहापुराण (कोड 29)—मूल, मोटा

» विशिष्ट संस्करण (कोड 1855)—» मूल,

भागवतस्तुतिसंग्रह (कोड 1092) श्रीप्रेमसुधासागर (कोड 30)—(ओड्आ भी) श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध (कोड 31)

जीवन-संजीवनी (कोड 1927)— श्रीमद्भागवतके सफल व्यावहारिक जीवन-सुत्र।

gitapressbookshop.in से गीताप्रेस प्रकाशन online खरीदें।